THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_176251
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 D99S Accession No. P. G. H1949

Author द्विवेदी, सोहनलाल

Title सेवाग्राम 1946.

This book should be returned on or before the date last marked below.

सेवाग्राम

जनता की भाषा में
जनता के भावों का
जनता का अपना काव्य

रचयिता : सोहनलाल द्विवेदी
संरक्षक : घनश्यामदास बिड़ला

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १५००
२ अक्टूबर १९४६

सर्वाधिकार सुरक्षित

चित्रकार : श्री शंभूनाथ मिश्र

मुद्रक तथा प्रकाशक
के० मित्रा, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

युगावतार

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,

पृष्ठ—२

ग्रन्थकार के नाम मालवीयजी का पत्र

प्रिय सोहनलालजी,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम अपनी राष्ट्रीय कविताओं को 'सेवाग्राम' नाम से एक ग्रंथ में छपवाकर महात्मा गांधी को उनकी ७८ वीं वर्षगांठ पर भेंट कर रहे हो। तुम्हारी कविताओं ने देश में सम्मान पाया है। मुझे विश्वास है कि इनका और भी अधिक प्रचार होगा। राष्ट्र के उत्थान और अभ्युदय में ये सहायक हों, ऐसी मेरी कामना है।

मदनमोहन मालवीय
२०।९।४६

ग्रन्थ के संरक्षक का वक्तव्य

सेवाग्राम सोहनलालजी द्विवेदी की राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह है। द्विवेदीजी की कविताएँ केवल कलाकारों के ही लिए नहीं हैं। उनमें रस तो होता ही है पर साथ में कुछ जीवन उपयोगी सार भी रहता है। कविता केवल विलास के लिए हो और सार न हो तो फिर वह निर्जीव सी बन जाती है। इस दृष्टि से सेवाग्राम की रचनाएँ अत्यन्त उपयोगी और पठन-पाठन के योग्य हैं।

घनश्यामदास बिड़ला

प्राक्कथन

डा० अमरनाथ झा, वाइसचांसलर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

किं कवेस्तस्यकाव्येन, किं काण्डेन धनुष्मतः ?
परस्य हृदये लग्नं न विघूर्णयति यच्छिरः !

संस्कृत साहित्य में विश्वप्रेम प्रचुर मात्रा में है, परन्तु स्वदेशप्रेम का चिह्न कम है। हमारे पूर्वजों का तो मत था "वसुधैव कुटुम्बकम्"। संसार-मात्र एक है, ईश्वर की समस्त सृष्टि एक है, मानव-जगत् एक है, ऐसी उनकी धारणा थी। परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक घटनाओं के कारण सम्पूर्ण जगत् में राष्ट्रीयता का भाव फैल गया है। पहले अपना देश, फिर अन्य देश––यह आज का गान है। इसकी आवश्यकता भी है। पश्चिमीय सभ्यता के बाह्य आडम्बर से हमारे मन में यह भाव उत्पन्न हो गया है कि जो कुछ आज आविष्कार हो रहा है, जो कुछ हमको अन्य देश में देख पड़ता है, जो कुछ हम विदेशीय साहित्य, विदेशीय राजनीति, विदेशीय दर्शन में पाते हैं वही अनुकरणीय है, और अपने देश की परम्परागत सभ्यता, अपना दर्शन, अपना साहित्य, अपने आदर्श गर्हणीय हैं, तिरस्कार-योग्य हैं। प्राचीनता और नवीनता का समन्वय उचित है। "पुराणमित्येव न साधु सर्वम्", परन्तु नवीन वस्तुओं का ग्रहण करना, केवल इसलिए कि वे नवीन हैं, उचित नहीं है। आज की परिस्थिति में हमें यह सोचना है कि हमारे देश के किन आदर्शों को हम सुरक्षित रक्खें जिनसे हमारा और विश्व का कल्याण हो। हमें यह शिक्षा अपने शास्त्रों से मिलती है कि हमारा प्रधान धर्म्म है कि अपने चित्त को शान्त रखकर आनन्द प्राप्त करें। हमारा प्रयास विश्व में शान्ति स्थापित करना होना चाहिए। हम सब से सुहृद् भाव रक्खें। हम पृथ्वी के जीवन को अपने आरम्भ और अन्त न समझें। हम आदर्शों और अपने कर्त्तव्य के पालन में अपने प्राण खोने से न घबराएँ। जिसने माया और ममता को छोड़कर राष्ट्रसेवा की है उसकी प्रशंसा करें, उसका अनुकरण करें। सेवाग्राम में इसी आदर्श को सामने रखकर कवितायें लिखी गई हैं।

आज के कवियों मे श्री सोहनलाल जी द्विवेदी की कविताओं की राष्ट्रीयता तथा प्रभावोत्पादकता से साहित्य-मर्मज्ञ बहुत प्रभावित है। आपके काव्य बच्चे आनन्द से पढ़ते है, उनका मनोरजन होता है। युवकों को इससे प्रोत्साहन मिलता है, नई चेतना मिलती है। प्रौढ़ पाठकों को इसमे विचार की गम्भीरता देख पडती है। सत्काव्य का लक्षण यह है कि वह सद्य. हृदयग्राही हो, अत सोहनलाल जी की कविता अवश्य उच्चकोटि की है। इसमे प्रत्येक रुचि को सन्तुष्ट करने की सामग्री है। देश-प्रेम और देश-भक्ति से तो पद-पद अनुप्राणित है। नवीनता के साथ साथ प्राचीनता का सम्मिश्रण है। अहिंसात्मक जन-आन्दोलन की झलक इन कविताओ मे है। और फिर भी कवि का दृष्टिकोण सकुचित नही है। राष्ट्र के प्रधान प्रशसनीय विभूतियों का गुणगान तो है, परन्तु ऐसा नही कि किसी समुदाय अथवा समाज-विशेष की इससे कोई क्षति हो अथवा अपमान हो। द्विवेदी जी की कृति शिष्ट है, रसपूर्ण तथा शक्तिपूर्ण है। इससे पहले श्री सोहनलाल जी की कविताओं के कई सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। बालकों के उपयुक्त झरना, शिशु-भारती, बाँसुरी, आदि सग्रह है। इनको बच्चे पढ़कर प्रसन्न हो सकते है और शिक्षा-ग्रहण कर सकते है। वासवदत्ता, हिन्दी-साहित्य मे एक अनूठी रचना है। कुणाल मे बडी कुशलता पूर्ण अतीत भारत की स्मृति के साथ अमर चरित्रों का सुन्दर परिचय मिलता है। भैरवी से स्वदेश-प्रेम जागृत होता है। युगाधार, पूजागीत, तथा प्रभाती राष्ट्रीय चेतना के काव्य-सग्रह है। इन कृतियों से कवि को प्रचुर लोकप्रियता तथा सम्मान प्राप्त हुआ है। परन्तु, इसमे सन्देह नही कि सेवाग्राम का स्थान इन सब से ऊँचा है।



निवेदन

सेवाग्राम मेरी राष्ट्रीय रचनाओं का संकलन है। ये रचनाएँ भैरवी, युगाधार प्रभाती तथा पूजागीत में संगृहीत की गई हैं। सभी राष्ट्रीय रचनाएँ एक पुस्तक में पाठकों के समक्ष आ सकें, इस प्रकाशन का यही उद्देश है।

अपनी रचनाओं के संबंध में मैं क्या कहूँ? मैं उनके गुण-अवगुण का अच्छा जानकार भी नहीं हो सकता! दूसरा कोई कुछ कहे, तो वह सुनने योग्य भी बात हो सकती है और मान्य भी।

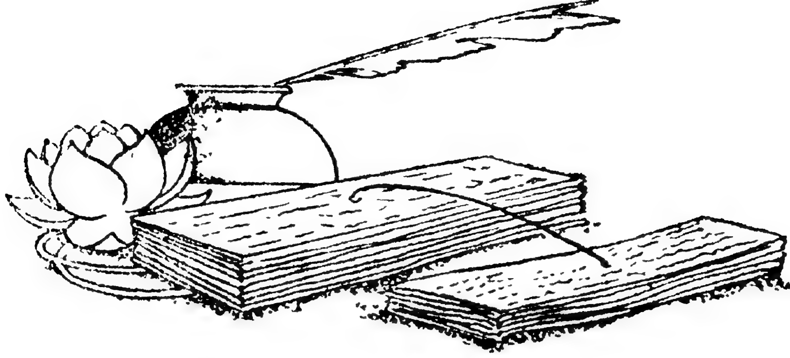
जहाँ अन्य कवियों ने स्वर्णकमलों से भारतमाता की पूजा की है, वहाँ ये निर्गन्ध किंशुक भी अनादृत न होंगे, इतना मुझे विश्वास है।

बिन्दकी, यू० पी०
१ अक्तूबर १९४६

सोहनलाल द्विवेदी



विश्ववंद्य बापू को
७७ वें जन्म-दिवस के
पुण्य पर्व पर
सादर प्रणाम
समर्पित



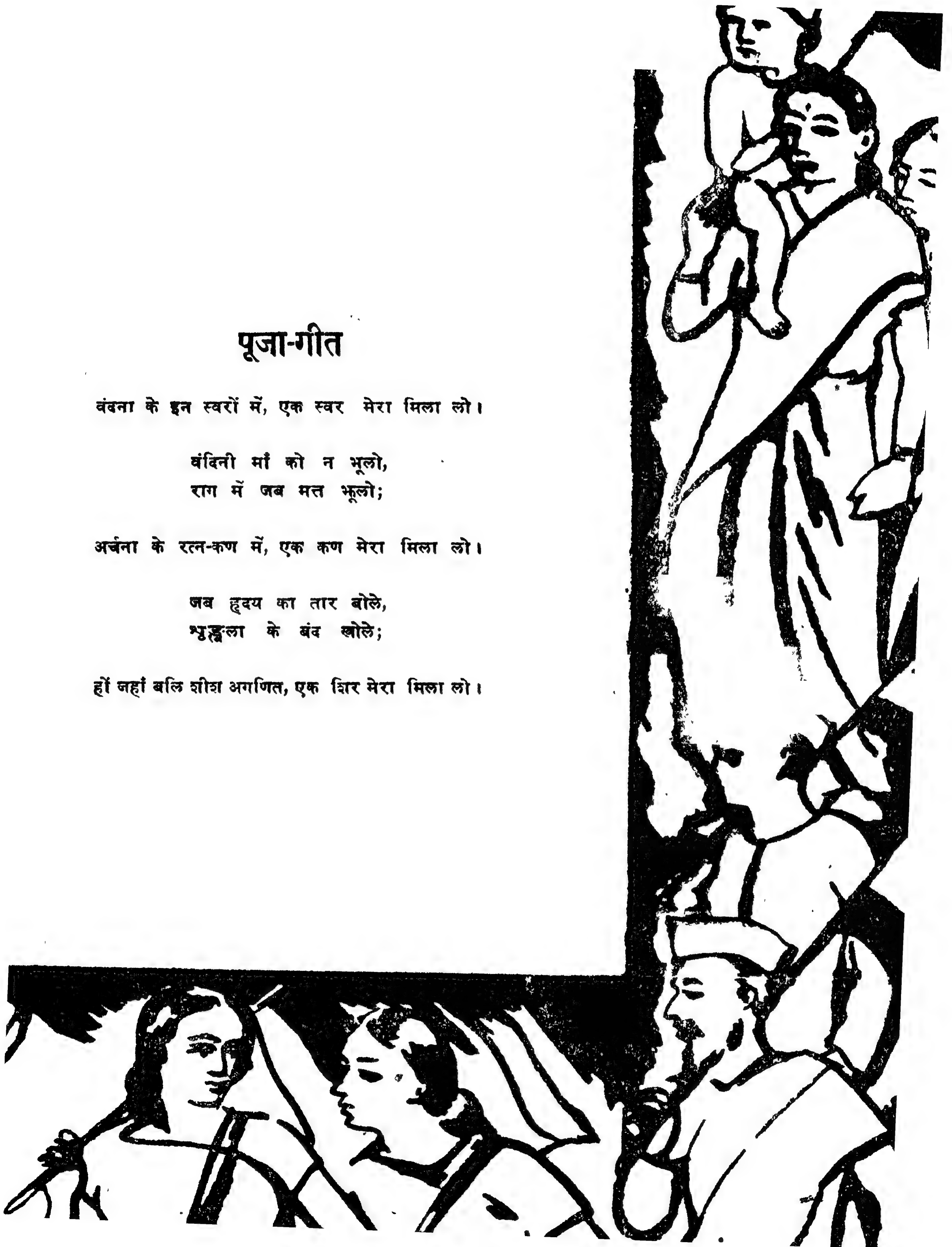
क्रम



चित्रकार : श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

राग में जब मत्त झूलो
वन्दिनी माँ को न भूलो,

पृष्ठ—१



पूजा-गीत

वंदना के इन स्वरों में, एक स्वर मेरा मिला लो।

वंदिनी माँ को न भूलो,
राग में जब मत्त भूलो;

अर्चना के रत्न-कण में, एक कण मेरा मिला लो।

जब हृदय का तार बोले,
शृङ्खला के बंद खोले;

हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।



युगावतार गांधी

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर;

जिसके शिर पर निज धरा हाथ
उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ;

हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु!
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एकमूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमर्ति, तुमको प्रणाम!

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख,
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिठ रेख;

तुम बोल उठे, युग बोल उठा,
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युगकर्म जगा, युगधर्म तना;

युग - परिवर्त्तक, युग - संस्थापक,
युग - संचालक, हे युगाधार !
युग - निर्माता, युग- मूर्त्ति ! तुम्हें
युग युग तक युग का नमस्कार !

तुम युग युग की रूढ़ियाँ तोड़
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नवजीवन की नींवें
ले नवचेतन की दिव्य - दृष्टि;

धर्माडंबर के खँडहर पर
कर पद - प्रहार कर धराध्वस्त,
मानवता का पावन मंदिर
निर्माण कर रहे सृजन - व्यस्त !

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी !
गढ़ते तुम अपना रामराज,
आत्माहुति के मणि-माणिक से
मढ़ते जननी का स्वर्णताज !

तुम कालचक्र के रक्त सने
दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुंह से
ला रहे खींच बाहर बढ़ बढ़;





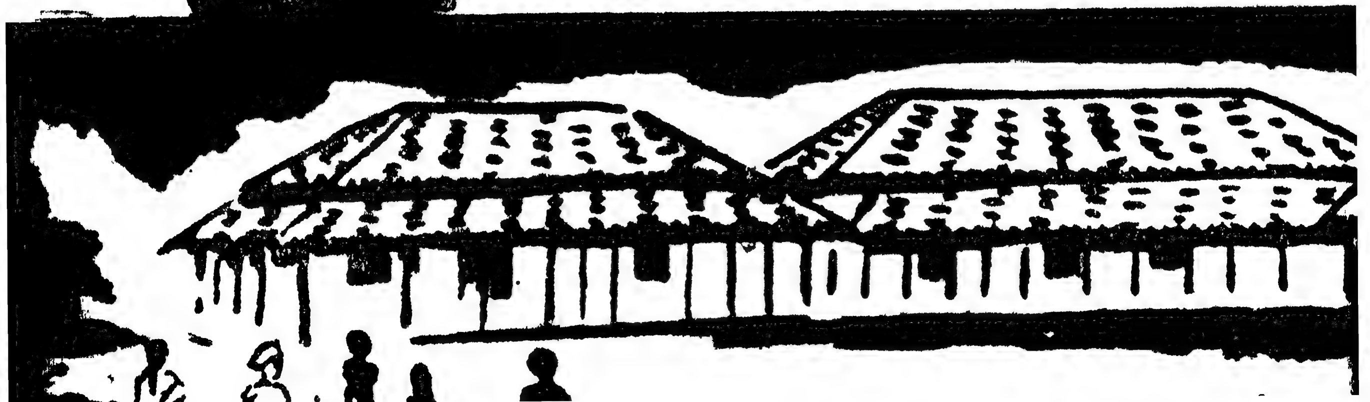
युगावतार गांधी

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर;

जिसके शिर पर निज धरा हाथ
उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ;

हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु!
हे कोटिरूप, हे कोटिनाम!
तुम एकमूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम!

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख,
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख;



तुम बोल उठे, युग बोल उठा,
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युगकर्म जगा, युगधर्म तना;

युग - परिवर्त्तक, युग - संस्थापक,
युग - संचालक, हे युगाधार!
युग - निर्माता, युग- मूर्त्ति! तुम्हें
युग युग तक युग का नमस्कार!

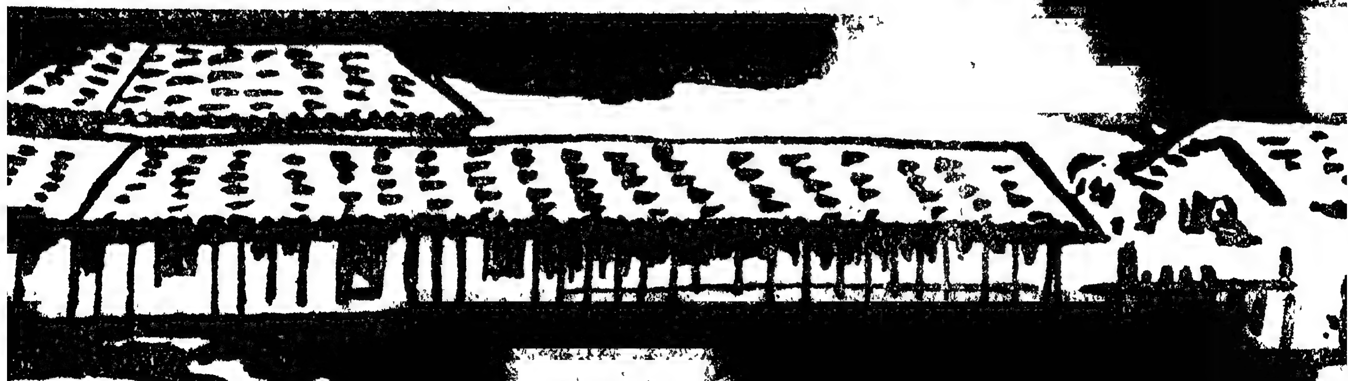
तुम युग युग की रूढ़ियाँ तोड़
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नवजीवन की नीवें
ले नवचेतन की दिव्य - दृष्टि;

धर्माडंबर के खँडहर पर
कर पद - प्रहार कर धराध्वस्त,
मानवता का पावन मंदिर
निर्माण कर रहे सृजन - व्यस्त!

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी!
गढ़ते तुम अपना रामराज,
आत्माहुति के मणि-माणिक से
मढ़ते जननी का स्वर्णताज!

तुम कालचक्र के रक्त सने
दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़ बढ़;







पिसती कराहती जगती के
प्राणों में भरते अभय दान,
अधमरे देखते हैं तुमको,
किसने आकर यह किया त्राण?

दृढ़ चरण, सुदृढ़ करसंपुट से
तुम कालचक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर
लिखते करुणा के पुण्य श्लोक!

कँपता असत्य, कँपती मिथ्या,
बर्बरता कँपती है थरथर!
कँपते सिंहासन, राजमुकुट
कँपते, खिसके आते भू पर,

हैं अस्त्र-शस्त्र कुंठित लुंठित,
सेनायें करतीं गृह-प्रयाण!
रणभेरी बजती है तेरी,
उड़ता है तेरा ध्वज निशान!

हे युग-द्रष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मंत्र?
इस राजतंत्र के खँडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र!



खादी-गीत

खादी के धागे धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा
अन्यायी का अपमान भरा;

खादी के रेशे रेशे में
अपने भाई का प्यार भरा,
माँ-बहनों का सत्कार भरा
बच्चों का मधुर दुलार भरा;

खादी की रजत चंद्रिका जब
आकर तन पर मुसकाती है,
तब नवजीवन की नई ज्योति
अन्तस्तल में जग जाती है;

खादी से दीन विपन्नों की
उत्तप्त उसास निकलती है,
जिससे मानव क्या पत्थर की
भी छाती कड़ी पिघलती है;







खादी में कितने ही दलितों के
दग्ध हृदय की दाह छिपी,
कितनों की कसक कराह छिपी
कितनों की आहत आह छिपी !

खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी,
कितनों की इसमें भूख छिपी
कितनों की इसमें प्यास छिपी !

खादी तो कोई लड़ने का
है जोशीला रणगान नहीं,
खादी है तीर कमान नहीं,
खादी है खड्ग कृपाण नहीं;

खादी को देख देख तो भी
दुश्मन का दल थहराता है,
खादी का झंडा सत्य शुभ्र
अब सभी ओर फहराता है !

खादी की गंगा अब सिर से
पैरों तक बह लहराती है,
जीवन के कोने कोने की
तब सब कालिख धुल जाती है !

खादी का ताज चांद-सा जब
मस्तक पर चमक दिखाता है,
कितने ही अत्याचार-ग्रस्त
दीनों के त्रास मिटाता है।



खादी ही भर भर देश-प्रेम
का प्याला मधुर पिलायेगी,
खादी ही दे दे संजीवन
मुर्दों को पुनः जिलायेगी;

खादी ही बढ़, चरणों पर पड़
नूपुर-सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी
आज़ादी को घर लायेगी।







हिन्दुस्तान

जगमग नगरों से दूर दूर
हैं जहाँ न ऊँचे खड़े महल,
टूटे-फूटे कुछ कच्चे घर
दिखते खेतों में चलते हल;

पुरई पालों, खपरैलों में
रहिमा रमुआ के नावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

नित फटे चीथड़े पहने जो
हड्डी-पसली के पुतलों में,
असली भारत है दिखलाता
नर-कंकालों की शकलों में;

पैरों की फटी बिवाई में,
अन्तस के गहरे घावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !





दिन-रात सदा पिसते रहते
कृषकों में औ' मजदूरों में,
जिनको न नसीब नमक-रोटी
जीते रहते उन शूरों में;

भूखे ही जो हैं सो रहते
विधना के निठुर नियावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

उन रात-रात भर, दिन-दिन भर
खेतों में चलते ढोलों में,
दुपहर की चना-चबेनी में
बिरहा के सूखे बोलों में;

फिर भी, ओठों पर हँसी लिये
मस्ती के मधुर भुलावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

अपनी उन रूप कुमारी में
जिनके नित रूखे रहें केश,
अपने उन राजकुमारों में
जिनके चिथड़ों से सजे वेश;

अंजन को तेल नहीं घर में
कोरी आँखों के हावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !





उस एक कुएँ के पनघट पर
जिसका टूटा है अर्ध भाग,
सब सँभल-सँभल कर जल भरते
गिर जाय न कोई कहीं भाग;

है जहाँ गड़ारी जुड़ न सकी
युग-युग के द्रव्य-अभावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

है जिनके पास एक धोती
है वही दरी, उनकी चादर,
जिससे वह लाज सँभाल सदा
निकला करतीं घर से बाहर,

पुर-वधुओं का क्या हो शृंगार ?
जो बिका रईसों-रावों में !
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

सोने-चाँदी का नाम न लो
पीतल-काँसे के कड़े छड़े।
मिल जायँ बहूरानी को तो
समझो उनके सौभाग्य बड़े !

राँगे की काली बिछियों में
पति के सुहाग के भावों में।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवो में !

ऋण-भार चढ़ा जिनके सिर पर
बढ़ता ही जाता सूद-ब्याज,
घर लाने के पहले कर से
छिन जाता है जिनका अनाज;

उन टूटे दिल की साधों में
उन टूटे हुए हियाओं में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

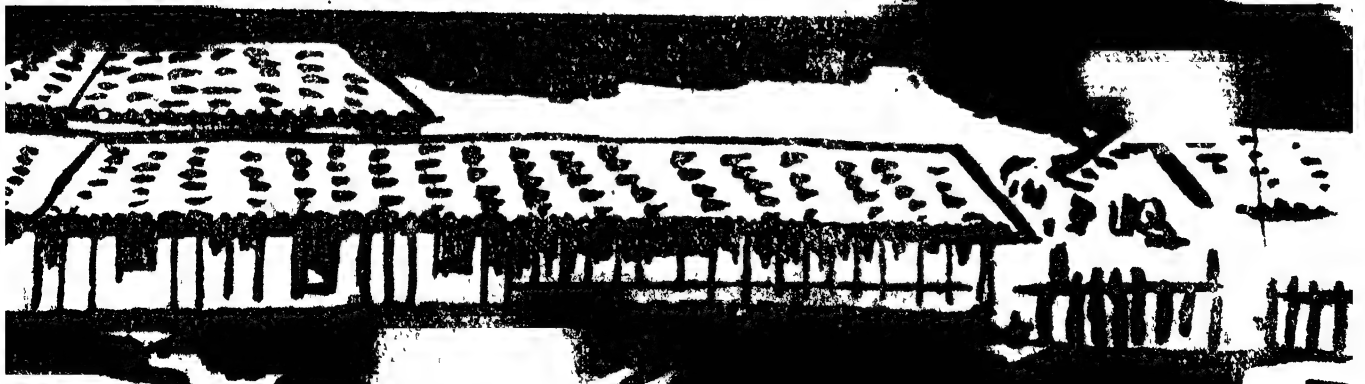
खुरपी ले ले छीलते घास
भरते कोछो की कोरों में,
लकड़ी का बोझ लदा सिर पर
जो कसा मूंज की डोरों में;

उनका अर्जन व्यापार यही
क्या करें ग़रीब उपावों में ?
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !

आजीवन श्रम करते रहना,
मुंह से न किंतु कुछ भी कहना,
नित विपदा पर विपदा सहना,
मन की मन में साधें ढहना;

ये आहें वे, ये आँसू वे
जो लिखे न कहीं किताबों में;
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गाँवों में !







जो एक प्रहर ही खा करके
देते हैं काट दीर्घ जीवन,
जीवन भर फटी लँगोटी ही
जिनका पीतांबर दिव्य वसन;

उन विश्व-भरण पोषणकर्त्ता
नर-नारायण के ठावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ?
वह बसा हमारे गाँवों में!

सेगाँव बनें सब गाँव आज
हममें से मोहन बने एक,
उजड़ा वृन्दावन बस जावे
फिर सुख की बंसी बजे नेक;

गूँजें स्वतंत्रता की तानें
गंगा के मधुर बहावों में।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ?
वह बसा हमारे गाँवों में!





किसान

ये नभ-चुम्बी प्रासाद-भवन,
जिनमें मंडित मोहक कंचन,
ये चित्रकला-कौशल-दर्शन,
ये सिंह-पौर, तोरन, वन्दन,

गृह—टकराते जिनसे विमान,
गृह—जिनका सब आतंक मान,
सिर झुका समझते धन्य प्राण,
ये आन-बान, ये सभी शान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !





ये रंग-महल, ये मान-भवन,
ये लीलागृह, ये गृह-उपवन,
ये क्रीड़ागृह, अन्तर प्रांगण,
रनिवास ख़ास, ये राज-सदन,

ये उच्च शिखर पर ध्वज निशान,
ड्योढ़ी पर शहनाई सुतान,
पहरेदारों की खर कृपाण,
ये आन-बान, ये सभी शान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

ये नूपुर की रुनझुन रुनझुन,
ये पायल की छम छम छम धुन,
ये गमक, मीड़, मीठी गुनगुन,
ये जन-समूह की गति सुनमुन,

ये मेहमान, ये मेज़मान,
साक़ी, सुराही का समान,
ये जलसा महफ़िल, समाँ, तान,
ये करते हैं किस पर गुमान ?

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

चलतीं शोभा का भार लिये,
अंगों का तरुण उभार लिये,
नखशिख सोलह शृङ्गार किये,
रसिकों के मन का प्यार लिये,

वह रूप, देख जिसको अजान
जग सुध-बुध खोता हृदय-प्राण,
विधि की सुन्दरता का बखान,
प्राणों का अर्पण, प्रणय-गान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिकमत पर किसान !
वह तेरी क़िस्मत पर किसान !

सभ्यता तीन बल खाती है,
इठलाती है, इतराती है,
शिष्टता लंक लचकाती है,
झुक झूम भूमि-रज लाती है,

नम्रता, विनय, अनुनय महान,
सज्जनता, मधुर स्वभाव बान;
आगत-स्वागत, सम्मान-मान,
सरलता, शील के विशद गान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी क़ूवत पर किसान !





शूरों-वीरों के बाहुदंड,
जिनमें अक्षय बल है प्रचंड,
ये प्रणवीरों के प्रण अखंड,
जो करते भूतल खंड-खंड,

ये योधाओं के धनुष-बाण,
ये वीरों के चमचम कृपाण,
ये शूरों के विक्रम महान,
ये रणवीरों की विजय-तान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी ताक़त पर किसान !

ये बड़े बड़े प्राचीन क़िले
जो महाकाल से नहीं हिले,
ये यशःस्तम्भ जो लौह ढले
जिनमें वीरों के नाम लिखे,

ये आर्यों के आदर्श गान,
ये गुप्त-वंश की विजय तान,
ये रजपूती जौहर गुमान,
ये मुग़ल-मराठों के बखान,

वह तेरी दौलत पर किसान !
वह तेरी मेहनत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !
वह तेरी जुर्रत पर किसान !



ये इन्द्रप्रस्थ के राज्य-सदन,
पाटलीपुत्र के भव्य भवन,
ये मगध, अयोध्या, ऋषिपत्तन,
उज्जैन अवन्ती के प्रांगण,

वैशाली का वैभव महान,
काशी-प्रयाग के कीर्ति-गान,
लखनवी नवाबों के वितान,
मथुरा की सुख-सम्पति महान,

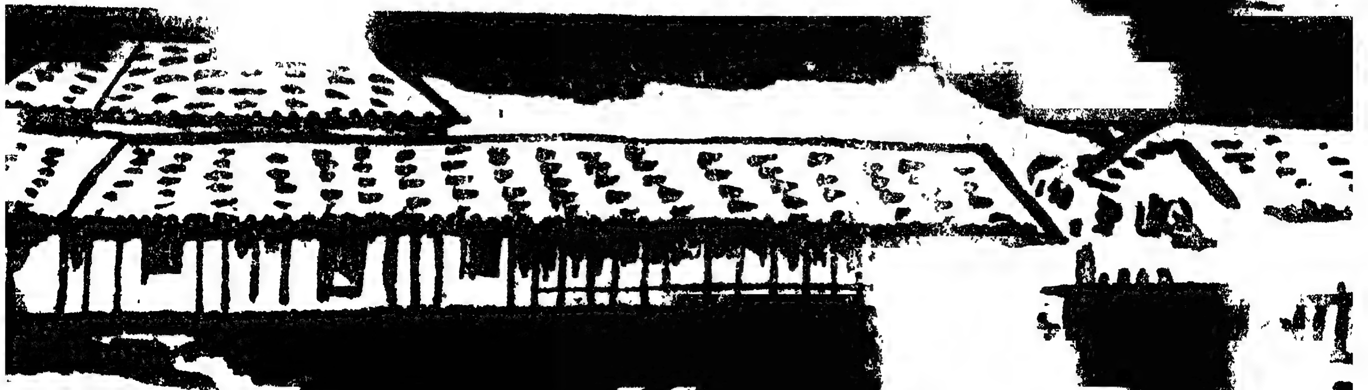
वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान!
वह तेरी ताक़त पर किसान!

इस भारत का सुखमय अतीत,
जिसकी सुधि अब भी है पुनीत;
इस वर्तमान के विभव गीत,
जिनमें मन का मधु संगृहीत,

आशाओं का सुख मूर्त्तिमान,
अरमानों का स्वर्णिम बिहान,
प्रतिदिन, प्रतिपल की क्रिया, ध्यान,
उज्ज्वल भविष्य के तान तान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान!
वह तेरी ताक़त पर किसान!







कल्पना पङ्ख फैलाती है,
छू छोर क्षितिज के आती है,
भावना डुबकियाँ खाती है,
सागर मथ अमृत लाती है,

ये शब्द विहग से गीतमान,
ये छन्द मलय से धावमान,
प्रतिभा की डाली पुष्पमान,
तनता है कविता का वितान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान!
वह तेरी ताक़त पर किसान!

निर्णय देते हैं न्यायालय,
स्नातक बिखेरते विद्यालय।
कौशल दिखलाते यन्त्रालय,
श्रद्धा समेटते देवालय,

ग्रन्थालय के ये गहन ज्ञान,
संगीतालय के तान-गान,
शस्त्रालय के खनखन कृपाण,
शास्त्रालय के गौरव महान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान!
वह तेरी क़ूवत पर किसान!



ये साधु, सती, ये यती, सन्त,
ये तपसी-योगी, ये महन्त,
ये धनी-गुनी, पण्डित अनन्त,
ये नेता, वक्ता, कलावन्त,

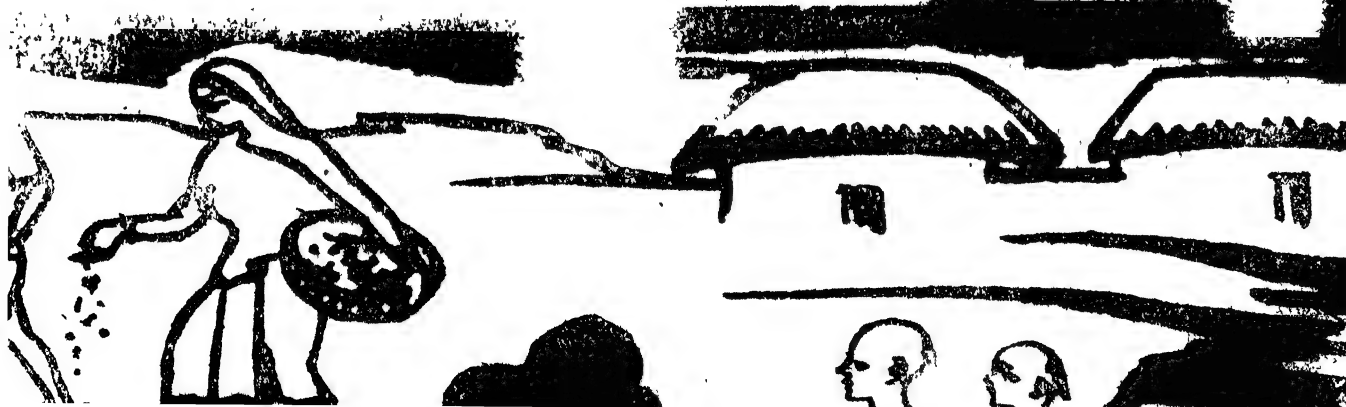
ज्ञानी-ध्यानी का ज्ञान-ध्यान,
दानी-मानी का दान-मान,
साधना, तपस्या के विधान,
ये मानव के बलिदान-गान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान!
वह तेरी ताक़त पर किसान!

ये धनन-धनन घन घंटा-रव,
ये झाँझ-मृदंग-नाद भैरव,
ये स्वर्ण-थाल आरती विभव,
ये शङ्ख-ध्वनि, पूजन कलरव,

ये जन-समूह सागर समान,
जो उमड़ रहा तज धैर्य-ध्यान,
केसर, कस्तूरी, धूप-दान
ये भक्ति-भाव के मत्त गान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी ग़फ़लत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान!





ये मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर,
पादरी, मौलवी, पण्डितवर,
ये मठ, विहार, गद्दी गुरुवर,
भिक्षुक, संन्यासी, यतीप्रवर,

जप-तप, व्रत-पूजा, ज्ञान-ध्यान,
रोज़ा-नमाज़, वहदत, अजान,
ये धर्म-कर्म, दीनो-ईमान,
पोथी पुराण, कलमा-क़ुरान,

वह तेरी दौलत पर किसान!
वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी न्यामत पर किसान!
वह तेरी बरकत पर किसान!

ये बड़े-बड़े साम्राज्य - राज,
युग-युग से आते चले आज,
ये सिंहासन, ये तख़्त-ताज,
ये क़िले दुर्ग, गढ़ शस्त्र-साज,

इन राज्यों की ईंटें महान,
इन राज्यों की नींवें महान,
इनकी दीवारों की उठान,
इनकी प्राचीरों के उड़ान,

वह तेरी हड्डी पर किसान!
वह तेरी पसली पर किसान!
वह तेरी आँतों पर किसान!
नस की ताँतों पर रे किसान!





चित्र : श्री सुधीर खास्तगीर के सौजन्य से

यदि उठ उठ तू ओ शेषनाग !
हो ध्वस्त पलक में राज्य भाग,
सम्राट् निहारें नींद त्याग,
है कहीं मुकुट तो कहीं पाग;

सामन्त भग रहे बचा प्राण,
सन्तरी भयाकुल लुप्त ज्ञान,
सेनायें हैं ढूंढ़ती त्राण,
उड़ गये हवा में ध्वज निशान !

साम्राज्यवाद का यह विधान
शासन सत्ता का यह गुमान
वह तेरी रहमत पर किसान,
वह तेरी गफ़लत पर किसान !

यदि हिल उठ तू ओ शेषनाग !
हो ध्वस्त पलक में राज्य-भाग,
सम्राट् निहारें, नींद त्याग,
है कहीं मुकुट, तो कहीं पाग !

सामन्त भग रहे बचा जान,
सन्तरी भयाकुल, लुप्त ज्ञान,
सेनायें हैं ढूँढ़ती त्राण;
उड़ गये हवा में ध्वज-निशान !

साम्राज्यवाद का यह विधान,
शासन-सत्ता का यह गुमान,
वह तेरी रहमत पर किसान !
वह तेरी ग़फ़लत पर किसान !

मा ने तुझ पर आशा बाँधी,
तू दे अपने बल की काँधी;
ओ मलय पवन बन जा आँधी,
तुझसे ही गाँधी है गाँधी,

तुझसे सुभाष है भासमान,
तुझसे मोती का बढ़ा मान;
तू ज्योति जवाहर की महान,
उड़ता नभ पर अपना निशान,

वह तेरी ताक़त पर किसान !
वह तेरी क़ूवत पर किसान !
वह तेरी जुरअत पर किसान !
वह तेरी हिम्मत पर किसान !







तू मदवालों से भाग-भाग,
सोये किसान, उठ ! जाग-जाग !
निष्ठुर शासन में लगा आग,
गा महाक्रान्ति का अभय-राग !

लख जननी का मुख आज म्लान,
वह तेरा ही धर रही ध्यान,
तेरा लोहा जो सके मान,
किसमें इतना बल है महान ?

रे मर मिटने की ठान-ठान,
हो स्वतन्त्रता का शुभ विहान।
गूंजे दिशि दिशि में एक तान—
जय जन्मभूमि ! जय-जय किसान !





कणिका

उदय हुआ जीवन में ऐसे
परवशता का प्रात।
आज न ये दिन ही अपने हैं
आज न अपनी रात!

पतन, पतन की सीमा का भी
होता है कुछ अन्त!
उठने के प्रयत्न में
लगते हैं अपराध अनन्त!

यहीं छिपे हैं धन्वा मेरे
यहीं छिपे हैं तीर,
मेरे आँगन के कण-कण में
सोये अगणित वीर!



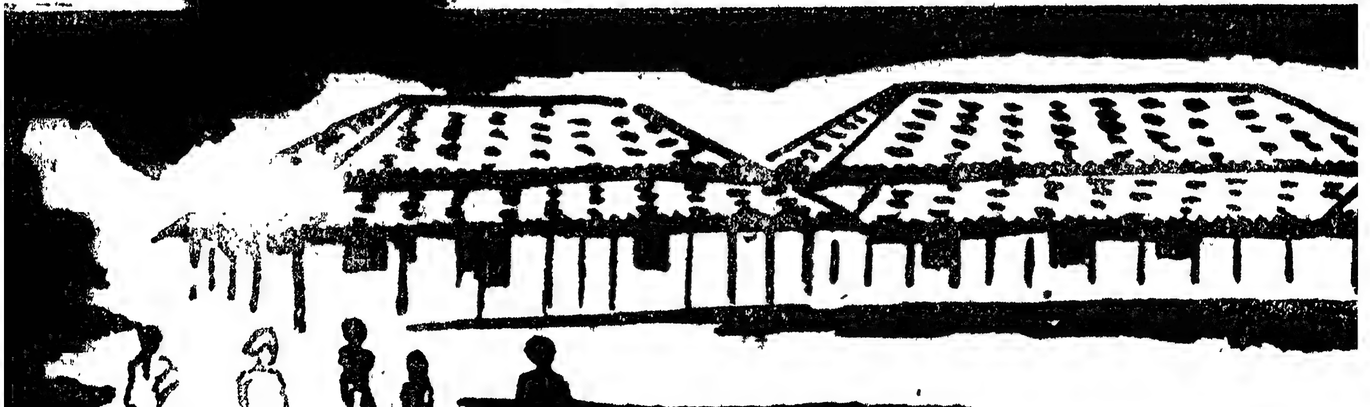


हल्दीघाटी

वैरागन-सी बीहड़ वन में
कहाँ छिपी बैठी एकान्त?
मातः! आज तुम्हारे दर्शन को
मैं हूँ व्याकुल उद्भ्रान्त!

तपस्विनी, नीरव निर्जन में
कौन साधना में तल्लीन?
बीते युग की मधुर स्मृति में
क्या तुम रहती हो लवलीन?

जगतीतल की समर-भूमि में
तुम पावन हो लाखों में;
दर्शन दो, तव चरणधूलि
ले लूँ मस्तक में, आँखों में।



तुममें ही हो गये वतन के
लिए अनेकों वीर शहीद,
तुम-सा तीर्थ-स्थान कौन
हम मतवालों के लिए पुनीत ?

आज़ादी के दीवानों को
क्या जग के उपकरणों में ?
मन्दिर मसजिद गिरजा, सब तो
बसे तुम्हारे चरणों में !

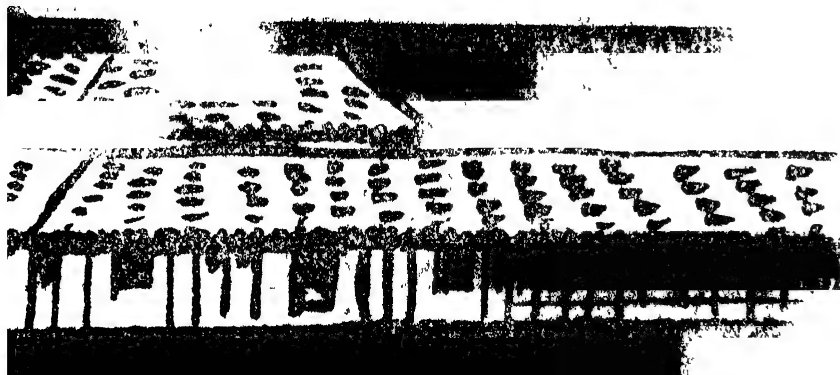
कहाँ तुम्हारे आँगन में
खेला था वह माई का लाल,
वह माई का लाल, जिसे
पा करके तुम हो गईं निहाल।

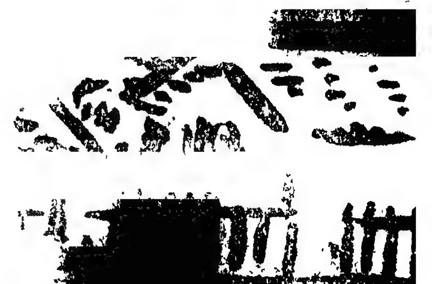
वह माई का लाल, जिसे
दुनिया कहती है वीर प्रताप,
कहाँ तुम्हारे आँगन में
उसके पवित्र चरणों की छाप ?

उसके पद-रज की क़ीमत क्या
हो सकता है यह जीवन ?
स्वीकृत हो, वरदान मिले,
लो चढ़ा रहा अपना कण-कण !

तुमने स्वतन्त्रता के स्वर में
गाया प्रथम प्रथम रणगान,
दौड़ पड़े रजपूत बाँकुरे
सुन-सुनकर आतुर आह्वान !









हल्दीघाटी, मचा तुम्हारे
आँगन में भीषण संग्राम,
रज में लीन हो गये पल में
अगणित राजमुकुट-अभिराम !

युग-युग बीत गये, तब तुमने
खेला था अद्भुत रण-रंग,
एकबार फिर, भरो हमारे
हृदयों में मा वही उमंग।

गाओ, मा, फिर एकबार तुम
वे मरन के मीठे गान,
हम मतवाले हों स्वदेश के
चरणों में हँस हँस बलिदान !

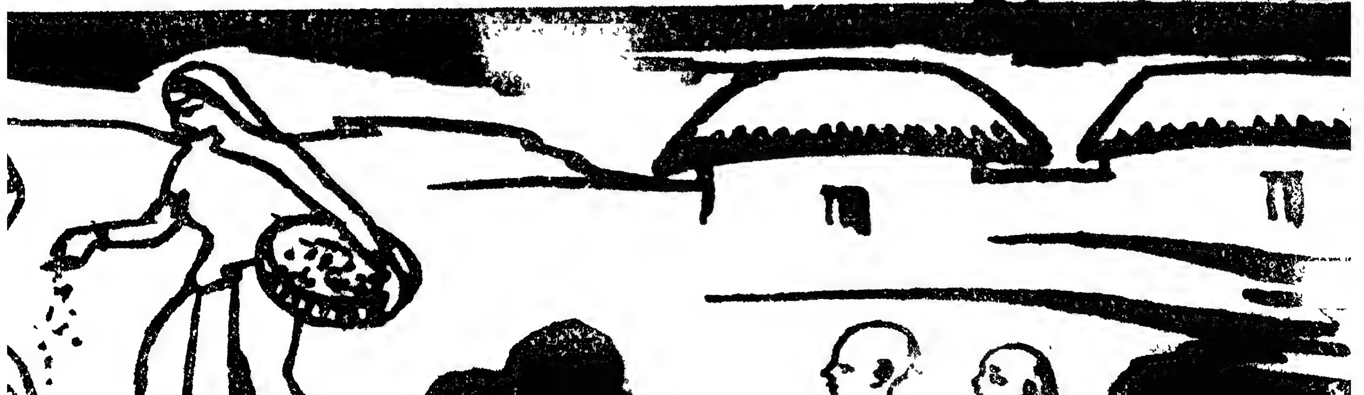




राणा प्रताप के प्रति

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक
बन गये आज ही वैरागी ?
उत्फुल्ल मधु-मदिर सरसिज में
यह कैसी तरुण अरुण आगी ?

क्या कहा, कि—,
'तब तक तुम न कभी,
वैभव-सिंचित शृङ्गार करो'
क्या कहा, कि—,
'जब तक तुम न विगत—
गौरव स्वदेश उद्धार करो !'





माणिक-मणिमय सिंहासन को
कंकड़ पत्थर के कोनों पर,
सोने-चाँदी के पात्रों को
पत्तों के पीले दोनों पर,

वैभव से विह्वल महलों को
काँटों की कटु झोंपड़ियों पर,
मधु से मतवाली बेलायें
भूखी बिलखाती घड़ियों पर,

रानी कुमार-सी निधियों को
मा की आँसू की लड़ियों पर,
तुमने अपने को लुटा दिया
आजादी की फुलझड़ियों पर !

निर्वासन के निष्ठुर प्रण में
धुँधुवाती रक्त-चिता रण में,
बाणों के भीषण वर्षण में
फौहारे-से बहते व्रण में,

बेटा की भूखी आहों में
बेटी की प्यासी दाहों में,
तुमने आजादी को देखा
मरने की मीठी चाहों में !

किस अमर शक्ति आराधन में
किस मुक्ति-युक्ति के साधन में,
मेरे वैरागी वीर ! व्यग्र
किस तपबल के उत्पादन में ?



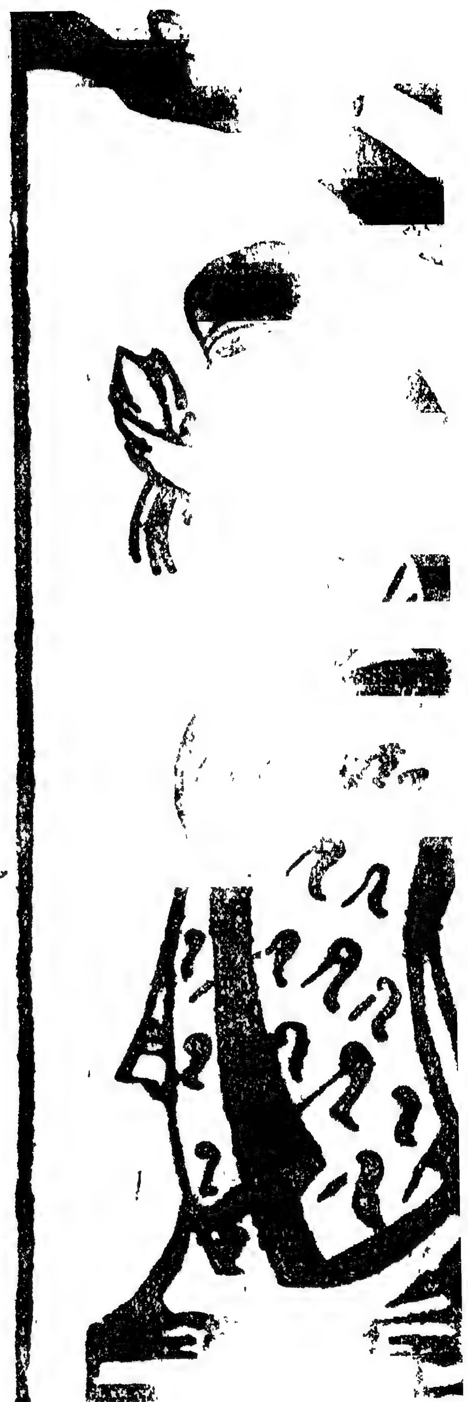
हम कसे कवच, सज अस्त्र-शस्त्र
व्याकुल हैं रण में जाने को,
मेरे सेनापति ! कहाँ छिपे ?
तुम आओ शंख बजाने को;

जागो ! प्रताप, मेवाड़ देश के
लक्ष्यभेद हैं जगा रहे,
जागो ! प्रताप, मा-बहनों के
अपमान-छेद हैं जगा रहे;

जागो प्रताप, मदवालों के
मतवाले सेना सजा रहे,
जागो प्रताप, हल्दीघाटी में
वैरी भेरी बजा रहे !

मेरे प्रताप, तुम फूट पड़ो
मेरे आँसू की धारों से,
मेरे प्रताप, तुम गूँज उठो
मेरी संतप्त पुकारों से;

मेरे प्रताप, तुम बिखर पड़ो
मेरे उत्पीड़न-भारों से,
मेरे प्रताप, तुम निखर पड़ो
मेरे बलि के उपहारों से।







बुद्धदेव के प्रति

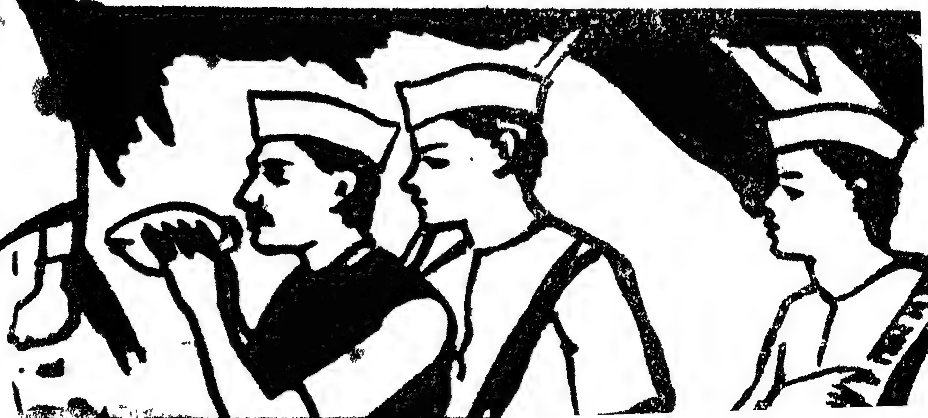
आओ फिर से करुणावतार!

घट-तट पर हृदय अधीर लिये,
हूं खड़ी सुजाता खीर लिये;
खोले कुटिया के बन्द द्वार।
आओ फिर से करुणावतार!

फिर बैठे हैं चिंतित अशोक,
शिर छत्र, किंतु है हृदय-शोक!
रण की जयश्री बन रही हार!
आओ फिर से करुणावतार!

मानव ने दानव धरा रूप,
भर रहे रक्त से समर-कूप,
डूबती धरा को लो उबार!
आओ फिर से करुणावतार!







डूबती धरा को लो उबार,
आओ फिर से करुणावतार!

पृष्ठ ३२

Post ... Library
College of Arts & Commerce. O. B.



महर्षि मालवीय

तुम्हें स्नेह की मूर्त्ति कहूँ
या नवजीवन की स्फूर्ति कहूँ,
या अपने निर्धन भारत की
निधि की अनुपम मूर्ति कहूँ ?

तुम्हें दया-अवतार कहूँ
या दुखियों की पतवार कहूँ,
नई सृष्टि रचनेवाले
या तुम्हें नया करतार कहूँ ?

तुम्हें कहूँ सच्चा अनुरागी
या कि कहूँ सच्चा त्यागी ?
सर्व - विभव - संपन्न कहूँ
या कहूँ तप-निरत वैरागी ?

तुम्हें कहूँ मैं वयोवृद्ध,
या बाँका तरुण जवान कहूँ ?
तुम इतने महान, जी होता
मैं तुमको अनजान कहूँ !





कह सकता हूं तो कहने दो
मैं तुमको श्रद्धेय कहूं।
निर्बल का बल कहूं,
अनाथों का तुमको आश्रेय कहूं।

श्रेय कहूं, या प्रेय कहूं
या मैं तुमको ध्रुव-ध्येय कहूं?
तुम इतने महान, जी होता
मैं तुमको अज्ञेय कहूं!

वीरों का अभिमान कहूं,
या शूरों का सम्मान कहूं?
मृदु मुरली की तान कहूं,
या रणभेरी का गान कहूं?

शरणागत का त्राण कहूं
मानव-जीवन-कल्याण कहूं?
जी होता, सब कुछ कह तुमको
भक्तों का भगवान कहूं!

जी होता है मातृ-भूमि का
तुम्हें अचल अनुराग कहूं,
जी होता है, परम तपस्वी
का मैं तुमको त्याग कहूं;

जी होता है प्राण फूंकने-
वाली तुमको आग कहूं,
इस अभागिनी भारत-
जननी का तुमको सौभाग्य कहूं!



विमल विश्वविद्यालय विस्तृत
क्या गाऊँ मैं गौरव-गान ?
ईंट-ईंट के उर से पूछो
किसका है कितना बलिदान।

है कालेज अनेकों निर्मित
फिर भी नित नूतन निर्माण।
कौन गिन सकेगा, कितने हैं
मन में छिपे हुए अरमान ?

तुम्हें आजकल नहीं और धुन
केवल आजादी की चाह।
रह-रह कसक कसक उठ्ठा
करती है उर में आह कराह !

गला दिया तुमने तन को
रो-रो आंसू के पानी में,
मातृभूमि की व्यथा हाय
सहते हम भरी जवानी में !

मिले तुम्हारी भक्ति देश को
हम जननी-जय-गान करें,
मिले तुम्हारी शक्ति देश को
हम नित नव उत्थान करें;

मिले तुम्हारी आग देश को
आजादी आह्वान करें,
मिले तुम्हारा त्याग देश को
तन-मन-धन बलिदान करें।





जियो, देश के दलित अभागों के
ही नाते तुम सौ वर्ष!
जियो, वृद्ध माता के उर में
धैर्य बँधाते तुम सौ वर्ष!

जियो, पिता, पुत्रों को अपना
प्यार लुटाते तुम सौ वर्ष!
जियो, राष्ट्र की स्वतन्त्रता
के आते-आते तुम सौ वर्ष!



तरुण तपस्वी

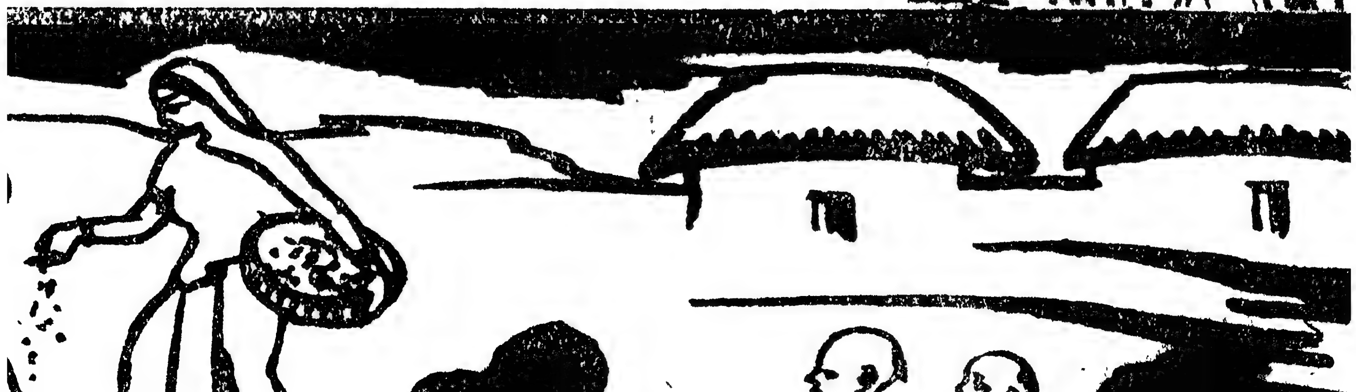
शुद्धोदन के सिंहासन के
सुख की ममता त्याग,
किस गौतम के यौवन में
जागा यह परम विराग ?

बोधिवृक्ष है नहीं,
हिमाचल की छाया के नीचे,
कौन तपस्वी तप करता है
करुणा-लोचन मीचे ?

बोल उठीं गंगा की लहरें—
यह है वह नरनाहर,
जिसकी जग में विमल ज्योति
जननी का लाल जवाहर !

ग्राम-ग्राम में नगर-नगर में
गृह-गृह में जा-जाकर,
आजादी की अलख जगाता
तन में भस्म रमाकर !







यह नेता है कोटि-कोटि
तरुणों के उर का स्वामी,
सारा भारतवर्ष आज है
इसका ही अनुगामी।

ओ भारत के तरुण तपस्वी!
तुम प्रतिपल जन-जन में,
स्वतन्त्रता की ज्वाला बनकर
धधक उठो मन-मन में।



सेगाँव का सन्त

विभु का पावन आदेश लिये
देवों का अनुपम वेश लिये,
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

युग-युग का घन तम है भगता,
प्राची में नव प्रकाश जगता;

एशिया खंड की दिव्य भूमि
शोभित है दिव्य प्रवेश लिये,
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

पग-पग में जगमग उजियाली
वन-वन लहराती हरियाली;

करुणावतार फिर क्या आया
करुणा का दान अशेष लिये ?
यह कौन चला जाता पथ पर
नव युग का नव संदेश लिये ?







क्या ग्राम-ग्राम, क्या नगर-नगर,
नवजीवन फैला डगर-डगर;

ये कोटि-कोटि चल पड़े किधर ?
नवयौवन का आवेश लिये।
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

कर में रण-कंकण हथकड़ियाँ,
पहनीं हमने माणिक-मणियाँ;

वैकुंठ बन गया बन्दीगृह
जो था। रौरव के क्लेश लिये।
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

किसने स्वतन्त्रता की आगी,
पग-पग मग-मग में सुलगा दी ?

नस-नस में धधक उठी ज्वाला
मर मिटने का उन्मेष लिये,
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

साम्राज्यवाद के दुर्ग ढहे,
शासन-सत्ता के गर्व बहे;

जनसत्ता है जग पड़ी आज
किसका वरदान विशेष लिये ?
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

रच आत्माहुति का महायज्ञ
प्रण पूर्ण कर रहा कौन प्रज्ञ ?

फहरा अंबर में सत्यकेतु
दिशि-दिशि के छोर प्रदेश लिये;
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?

वह मलय पवन, वह है आंधी,
वह मनमोहन, वह है गांधी;

झुकता हिमाद्रि जिसके पदतल
अपना गौरव निःशेष लिये।
वह आज चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिये ?





तुलसीदास

जब मुग़ल महीपों के बादल
छाये जीवन-नभ में अपार
दासता, पराजय, गृह-विग्रह
से गहराया तम का प्रसार;

तब रामनाम का अमृत ले
आये गौरव गाते अमंद्र,
मृत हत जनता को मिले प्राण
चमके तुम बन सौभाग्य-चंद्र !

हिन्दूकुल का जब महापोत
था इस जग-जलनिधि में अधीर,
तुम बने अचल आकाशदीप
दिखलाया प्रतिपल सुगम तीर,

अंधड़ वैभव के बहे घोर
लहरें विलास की उठीं रोर,
तुम सुदृढ़ पाल बन लोकपाल
तब ले आये निज धर्म ओर।



गाते यदुपति के रूपगीत
आये थे प्रेमी सूरदास,
जर्जरित धमनियों में हमने
पाया नवयौवन का विलास;

पर, वह पौरुष, वह बलविक्रम,
जिससे जय मिलती अनायास,
दी शक्ति तुम्हीं ने शक्तिमूर्ति,
तब उठे पुनः हम गिरे दास;

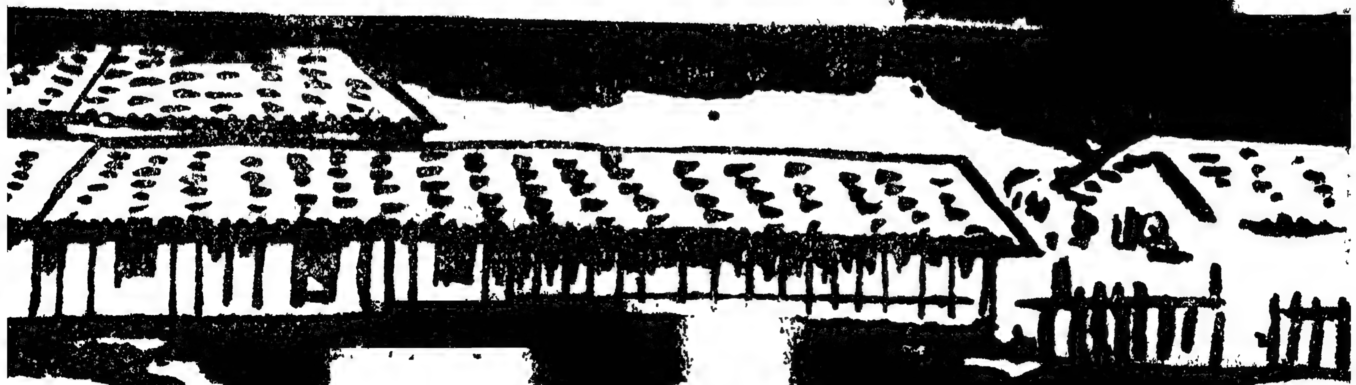
पा रामनाम का विजयमंत्र
हम भूल गये निज देशकाल,
उत्साह जगा, साहस फूटा,
फिर से नत, उन्नत हुए भाल;

हम अड़े अचल हो निज पथ पर
हम खड़े हुए निज पग सँभाल,
हम गड़े धर्म-हित पर अपने
हम लड़े कर्म-हित ठोंक ताल।

उपनिषद्, वेद, दर्शन, पुराण,
शत सद्ग्रंथों का खींच सार,
प्रतिपल जप के संपुट दे दे
सुलगा तप की ज्वाला अपार,

फिर निज मन के मुक्ताकण दे,
औ' लोकवेद की धातु ढार,
यह राम-रसायन रचा विमल
नश्वर तन को अमृतोऽपहार!







'क्यों हुई न तुमको ग्लानि नाथ ?
क्यों आई तुम्हें न लाज नाथ ?
इतने कामाकुल बन अधीर,
आये अंधे बन आज नाथ !

'इस हाड़-मांस के पुतले पर
तुमको है जितनी परम प्रीति,
इतनी होती यदि रामचरण,
तो होती तुमको फिर न भीति ?'

इस जग जीवन का सार मान,
जिस पर अर्पित नित किये प्राण !
तज लोक-लाज, तज लोक-भीति
आये जिसके गृह शरण मान,

उसने ही तन मन प्राणों पर,
जब किया कठिन निर्मम प्रहार,
अनुभूति विभूति मिली उस दिन,
तुम हुए उसी दिन निर्विकार !

उठती होगी तब तो न देह
चेतन भी होगा जड़ीभूत,
जब लगे लौटने होगे तुम
यों निपट निराशा से प्रभूत,

दृग-तल होगा, घन अंधकार,
पद तल पथ, जिसका हो न छोर,
जड़ वाणी, जड़ मन नयन प्राण,
उठते न चरण होंगे कठोर !



हे तुलसी, दृग में लिये अश्रु
लेकर उर में व्रण दीर्घ घाव,
तुम चले प्रताड़ित किधर कहाँ
कैसे कब मन में जगे भाव?

निन्दित तुलसी, क्रन्दित तुलसी,
तुम चले किधर मेरे निराश,
कर में ले दीपक बुझा हुआ,
विक्षिप्त बने, मुखश्री उदास!

जर्जरित हृदय, जर्जरित देह
जर्जरित लिये ये क्षुब्ध प्राण,
कितने दुख से तुमने प्रेमी,
तब कहीं किया होगा प्रयाण?

किसके पुर में, किसके उर में,
कब कहाँ कहाँ पर ढूँढ़ त्राण?
घूमें होंगे पागल तुलसी,
अन्तस में दाबे विषम बाण!

प्रेमी के उर की प्रेम प्यास की
लगा सका है कौन थाह?
प्रणयी के मन की साधों की
पा सका कौन है तट अथाह?

प्रेमी की गहन निराशा का
पा सका अभी तक छोर कौन!
इन प्रश्नों का उत्तर प्रतिध्वनि,
इनका उत्तर है अमर मौन!







सद्‌भक्ति जगी उर में प्रपूर्ण
अनुकरण किया नित आर्य-पंथ,
तब रामनाम के अक्षर से
लिखने बैठे निज आयुग्रंथ।

जीवन के निशिदिन-पृष्ठों पर,
जिनमें अंकित था 'काम' काम,
क्या परिवर्तन, क्या आवर्तन?
वे गूंज उठे बन 'राम राम'!

नित संतशरण, नित संतचरण,
सद्‌ग्रंथ पठन, सद्‌ग्रंथ मनन,
स्वाध्याय बना जीवन का क्रम,
नित कामदमन, नित रामरमण।

तुम चले विचरते तीर्थ-तीर्थ
करने मन का मल पाप-हरण,
काशी, प्रयाग, वृन्दावन में,
हैं बने तुम्हारे अमिट चरण!

ये युग-युग के थे पूर्ण पुण्य
ये युग-युग के थे संस्कार,
ये युग-युग के थे जप औ' तप
ये युग-युग के थे व्रत अपार;

सोये से जाग उठे पल में
सोये फिर कभी न पलक मार,
श्री रामनाम का राग उठा
गमके प्राणों के तार तार!



हे भक्तमाल के कौस्तुभ मणि,
सन्तों की वाणी के विलास,
अधिकृत की कौन न कृति तुमने,
दर्शन पुराण के दृढ़ प्रयास!

है शब्द-शब्द में भरा भाव,
है छंद-छंद में भरा ज्ञान,
है वाक्य-वाक्य में अमर वचन,
वाणी में वीणा का विधान!

काशी का वह आवास कौन
जो बना तुम्हारा सिद्धि-पीठ?
संकेत बता सकते तो फिर,
कितने न लगाते वहाँ वीठ।

साधक, वह कौन सिद्धि-आसन,
जिससे तुम द्रुत पा गये सिद्धि,
सब सिद्धि समृद्धि झुकी पद-तल,
हे सिद्ध, तुम्हारी लख प्रसिद्धि!

गुरु बोल उठे श्री रामनाम
तुम बोल उठे श्री रामनाम,
गंगा की लय में लहरों में
हिल्लोल उठे श्री रामनाम!

जन-जन में मन-मन में क्षण-क्षण,
कल्लोल उठे श्री रामनाम।
जब उठी तुम्हारी अन्तर्ध्वनि
तब डोल उठे वे स्वयं राम!





कितनी अनन्य थी परम भक्ति,
जब देखा वंशी सजी हाथ,
बोले, लो, धनुषबाण कर में,
तब तुलसी-मस्तक झुके नाथ!

रीझे होंगे, खीझे होंगे
इस शिशुहठ पर वे प्रणतपाल!
घनश्याम मुग्ध हो बने राम
तब झुका तुम्हारा भक्त-भाल!

मीरा, वह गिरिधर की दासी,
जब पा भव का रौरव अशांत,
श्रीचरण शरण को वरण किया,
आई करुणा से स्वराक्रांत,

सङ्कटमोचन, दृढ़व्रती, तुम्हीं ने
दे तब दृढ़ रति का विधान,
दे अभय दान आकुल उर को
जीवन में जीवन दिया दान!

पी गई तुम्हारा बल पाकर
वह कालकूट को अमृत मान,
वंशीधर पदतल-प्रीति लगी,
तब जन्म-मरण दोनों समान!

वैभव-विलास के भवन त्याग,
एकाकी, निर्जन अर्धरात,
यमुनातट पर वंशी-ध्वनि सुन,
चल पड़ी बावली पुलकगात;



मीरा, वह भक्तिमूर्त्ति मीरा,
चल पड़ी जिधर वह तीर्थ बना,
मरुथल में यमुना उमड़ चली
तरुतल तमाल का कुंज घना,

करतालों की करतल-ध्वनि में
जब बोल उठी वह कृष्ण कृष्ण,
भूमंडल झूम उठा रस में
जल थल, तरु तृण, जागे सतृष्ण!

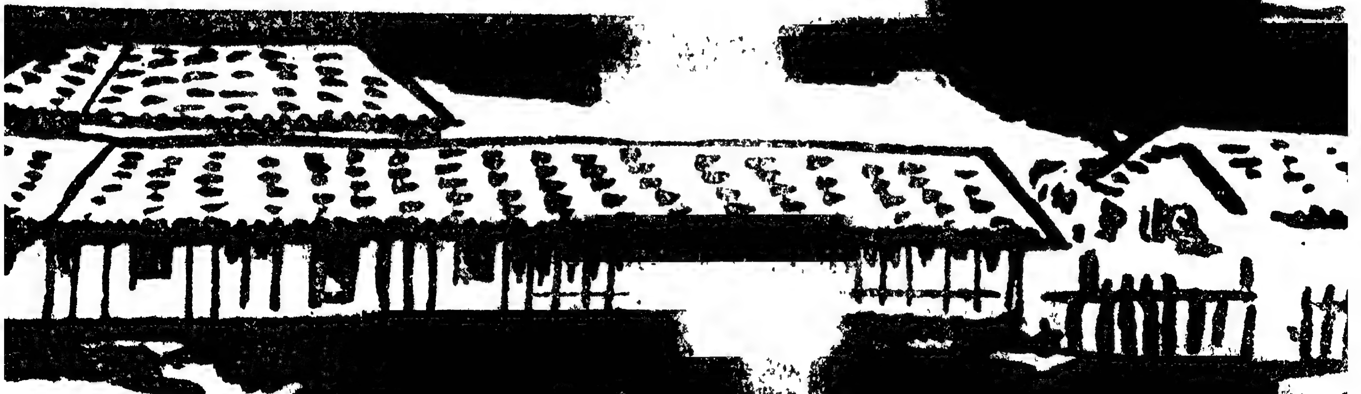
'धनधाम, धरा परिवार तजो,
जिससे न रामपद लगे प्रीति',
गूंजते तुम्हारे अमर वाक्य,
प्रतिपल प्राणों में बन प्रतीति;

जब प्रीति जगी सच्ची मन में
तब लोकलाज, क्या लोकभीति?
प्रिय रति अनन्य, गतिमति अनन्य,
नित धन्य तुम्हारी प्रेम-नीति!

तुलसी, यदि तुम आते न यहाँ
हम ढोया करते धरा धाम,
वैभव-विलास में मर मिटते
सूझता हमें कब सत्य काम?

निर्गुण निरीह के घन तम में,
भटका करते हम बार-बार,
यदि सगुण रूप की दिव्य ज्योति,
देते न मधुरतम तुम प्रसार!







विस्मरण हमें है वाल्मीकि
भूले गीता, भूले पुराण,
दुर्गम दुर्बोध वेद हमको,
वैदिक वाणी से हम अजान।

अपनी गतिमति, अपनी संस्कृति,
अपनी गति-विधि, होता न ज्ञान,
यदि तुम न क्रान्तदर्शी! भरते
हिन्दी में हिन्दू-धर्म प्राण;

वैष्णव-शैवों में छिड़ा द्वंद्व,
तुम सद्वैष्णव आये उदार!
बिछुड़े हृदयों को मिला दिया।
हो गये एक बिखरे अपार,

मिट गई कलह, छा गई शान्ति,
तुमने दी वह ममता प्रसार,
हिन्दूकुल की बिखरी लड़ियाँ
हो गईं एक पा स्नेह-तार!

संस्कृत का सिंहासन जिसमें
कवि कालिदास औ' व्यास भास,
आश्रय पाकर के हुए विश्रुत
वीणा वाणी के बन विलास।

पर, तुम भव का गौरव बिसार,
हिन्दी जननी के बढ़े द्वार
सम्राज्ञी बना दिया उसको
जो थी भिखारिणी कल अपार;





रच रामचरित का विशद ग्रंथ
तुम बनकर ज्योतित कोटि दीप,
युग देशकाल पर भुज प्रसार
मिलते आ प्राणों के समीप;

मेरी जननी के जन-जन में
तुम बसे बने मन के महीप,
तुम-सा जीवन मुक्ता पाने
बन जाते कितने देश सीप।

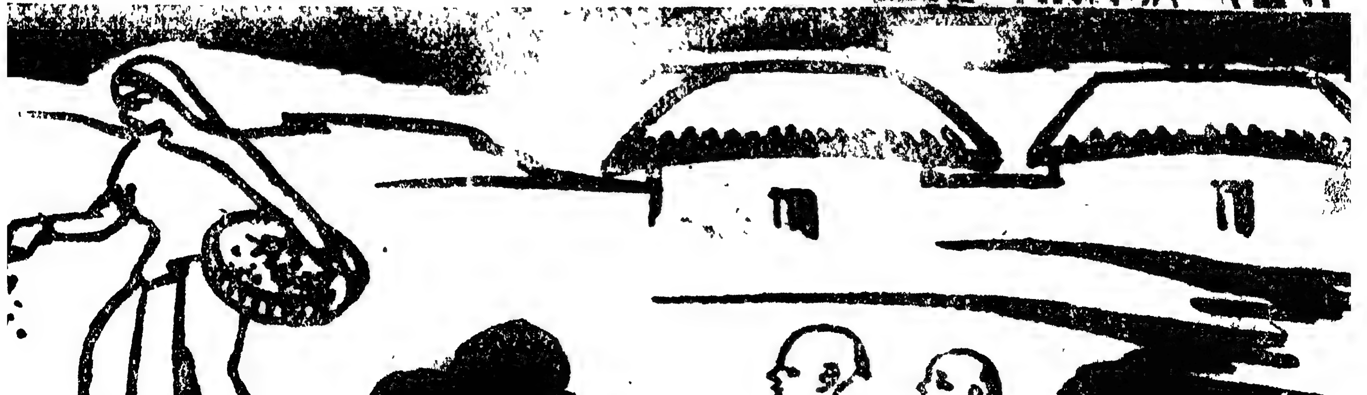
युग-चक्र प्रवर्त्तन किया अचल,
संगठित किया बिखरा समाज,
श्री रामनाम का शंख फूंक,
जागरण प्रतिष्ठित किया आज।

मंदिर के घंटों से जागी
फिर आर्यों की आत्मा महान,
अभ्युदय हुआ निज गौरव का
विस्मृत संस्कृति में पड़े प्राण।

तुम आर्यों के जन गण नायक,
करके प्रबुद्ध जनमत अबोध,
ले चले क्रान्तिपथ पर हमको
नित मुक्ति युक्ति की किया शोध।

जीवन भर ही मन प्राणों से
नित किया अनार्यों से विरोध,
कर गये अधिष्ठित आर्यधर्म
भर गये राम से आतमबोध!







जनगण के दुख से हो विगलित
उद्धारहेतु, कर्त्तव्यमूढ़
तुम चले ढूंढ़ने संजीवन
जो युग-युग तक दे शक्ति गूढ़;

भैरवी रामगुण की गाई
जागे जिससे बुध और मूढ़;
तुम जातिरथी, तुम राष्ट्ररथी,
तव प्रगति देख, गतिमति विमूढ़ !

गूँजो फिर बनकर रामनाम !
जनगण की वाणी में प्रकाम।
गूँजो फिर बनकर रामनाम !
बंदी के प्राणों में ललाम !

गूँजो फिर बनकर रामनाम,
रणवीरों के मन में अकाम !
नवराष्ट्र-जागरण के युग में
गूँजो तुलसी तुम धाम-धाम !

गूँजो बापू के दृढ़ स्वर में
गूँजो गांधी की दृढ़ गति में,
गूँजो स्वदेश मतवालों की
वीणा वाणी में दृढ़ मति में।

गूँजो नंगों भिखमंगों की
विप्लव तानों में धृति रति में,
नव राष्ट्र-संगठन के युग में
गूँजो तुम कोटि चरण गति में !



दो हमको भूली कर्म-शक्ति
दो हमको फिर से आत्मबोध,
दो हमें राम के मानस का
वह क्षत्रिय का अपमान-क्रोध;

दो लक्ष्मण का वह भ्रातृभाव,
हम बढ़ें, सुदृढ़ हो जातिबोध,
ले चलो हमें जययात्रा में
कवि, बनो राष्ट्रकवि, राष्ट्रबोध !

दो नवचेतन, दो नवजीवन,
दो संजीवन, दो देशभक्ति,
दो नित्य सत्य हित लड़ने की
नस-नस प्राणों में आत्मशक्ति।

दो महावीर का बल विक्रम,
लांघें समुद्र त्यागें अशक्ति,
सीता-स्वतंत्रता गृह आवे,
हो भस्म स्वर्ण-लंका विरक्ति;

जो राम-राज्य गाया तुमने
छाया है जिसका यश-वितान,
थे राव-रंक सब सुखी जहां
थे ज्ञानकर्म से मुखर प्राण,

युग-युग की दृढ़ शृङ्खला तोड़,
है शुभ स्वराज्य का फिर विहान
इस राष्ट्र-जागरण के युग में
कवि उठो पुनः तुम बन महान!







दाँडी-यात्रा

पूछता सिंधु था लहरों से
क्यों ज्वार अचानक तुम लाईं ?
लहरें बोलीं,—'क्या मनमोहन की
वेणु न तुमने सुन पाई ?'

रण-यात्रा में है चला आज
वृन्दावन का वंशीवाला।
बोला तब लवण-सिंधु पूजूं,
'लावण्यमयी, जा कुछ ले आ!'

लहरें बोलीं, तट पर आकर
देखो, वह टोली है आई।
उद्ग्रीव सिंधु हो उठा मुखर
कैसी बांकी झांकी छाई ?

सब से आगे फहराता था
जय-ध्वजा, तिरंगा ध्वज प्यारा।
पीछे बजती थी बीन मधुर
वंशी सितार का स्वर न्यारा!



पूछा तरुओं ने आस-पास
यह है किस आसव की मात्रा ?
तब काली कोयल कुहुक उठी
यह बापू की डाँड़ी-यात्रा !

किस तरह चले, ये कौन चले
कब कहाँ चले, बोलो रानी !
सागर ने पूछा लहरों से—
कुछ तो बतलाओ कल्याणी !

लहरों ने मर्मर स्वर भर कर
बन ऊर्मि कथा मधु-भरी कही।
ओ, पारावार अपार, सुनो
इस यात्रा की कुछ बात सही !

जब ब्रिटिश राज्य के दूतों ने
कुछ भी न न्याय का मत माना,
अन्याय भंग करने को तब
बापू ने यह रण-प्रण ठाना।

आश्रम में गूंज उठा संदेश—
कल प्रात समर-यात्रा होगी,
जिसको चलना हो चले साथ,
जो हो अपने घर का योगी।

हल-चल-सी फैल गई पल में
जागी फिर साबरमती रात,
वीरों का सजने लगा संघ
होगा पावन प्रस्थान प्रात।





कब सोया कौन कहाँ निशि में
सबने उमंग के साज सजे,
नंगे फ़क़ीर के कुछ चेले
मतवालों ने पर्यंक तजे।

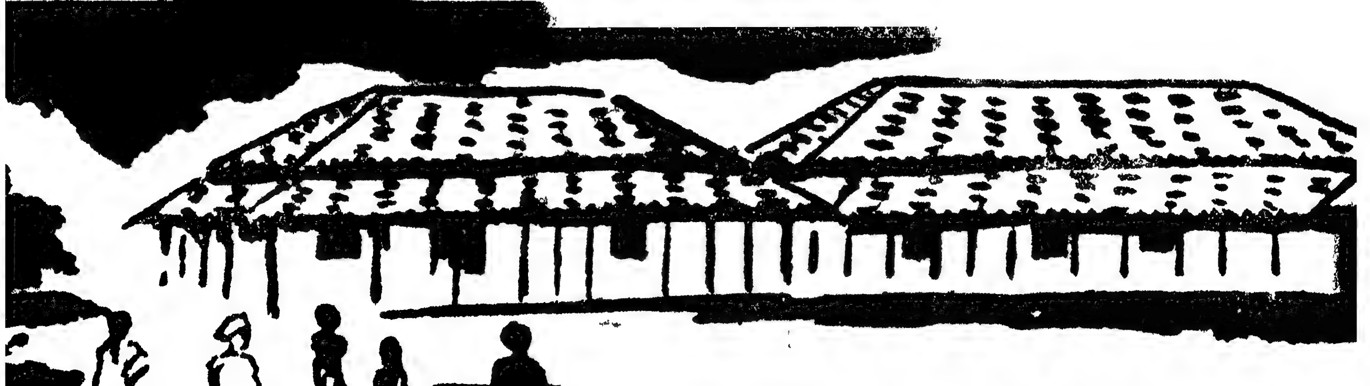
पति से यों पत्नी ने पूछा—
हे नाथ, साथ ले चलो मुझे।
'पगली! तेरा कुछ काम नहीं,
घर रहना ही कर्तव्य तुझे!'

'तुम जाओगे क्या एकाकी,
मैं रह न सकूँगी एकाकी;'
बोली यों पति से फिर पत्नी
अपनी चितवन को कर बाँकी।

पति चले, चली पत्नी पुलकित
मन में उत्साह अतुल उमंग,
स्वाहा कर सुख-वैभव विलास
ले ब्रह्मचर्य का व्रत अभंग!

भाई बहनों के पास गये
बोले, 'बहना! दो बिदा आज,
अपने मंगल जल अक्षत से
दो मेरे प्रण का कवच साज।'

बहनें बोलीं, 'भैया न बनेगा
यह एकाकी मौन गमन,
हम भी पीछे-पीछे पद पर
अनुगमन करेंगी मंद चरण।'



भाई-बहनें चल पड़ीं संग
था रङ्ग उमङ्गों में गहरा।
उत्सुकता ने सोने न दिया
जाग्रति ने दिया मधुर पहरा।

जननी के श्रीचरणों में पड़
बोले बेटा, दो बिदा आज,
माता के आँचल में सनेह
का सागर उमड़ा दूध-ब्याज।

जननी के उर का गर्व जगा
माँ के उर का अभिमान जगा,
तू धन्य पुत्र! जो जननी के
हित बढ़ा युद्ध में प्रेमपगा।

मा ने बेटे के मस्तक पर
रोचना किया अक्षत छोड़े,
आशीर्वाद वरदान प्राप्त कर
चले वीर साहस जोड़े।

चल पड़ी बहन, चल पड़े बंधु
चल पड़ीं जननि चल पड़े पुत्र,
पति चले चली पत्नी उनकी
जुड़ गया स्नेह का सरस सूत्र।

कुछ चले किशोर-किशोरी भी
बापू के प्यार-भरे छौने,
कर्त्तव्य - गोद में खेल रहे
वात्सल्य-भाव के मृग-छौने!





क्या कहूँ वेश उनका सुन्दर,
मस्तक पर थी अक्षत-रोली,
अधरों पर थी मुस्कान मन्द
आँखों में रण-प्रण की होली।

खादी की साड़ी बहन सजीं
खादी के कुर्ते बन्धु सजे,
चप्पल चरणों में समर साज
रण-दुंदुभि बन जो सतत बजे।

खादी के ताज सजे सिर पर
केसरिया पागों से बढ़कर,
ज्यों चांद सैकड़ों उग आये
अवनी पर, भू के अंबर पर!

बच्चों, बूढ़ों, मा-बेटों की
भाई-बहनों की यह टोली,
झूमती चली मतवाली बन
उर पर खाने गोला-गोली!

बापू ले अपनी चिर-संगिनि
जो है उनकी लघु-सी लकुटी,
चल पड़े सुदृढ़ पग, सुदृढ़ बाहु
दृढ़ कर अपनी सीधी भ्रकुटी।

नतमस्तक उन्नत गर्व लिये
नतनयन स्नेह के भार झुके।
कटि कसे कछौटी खादी की
आजानबाहु, जो नहीं रुके।



उस दिन भारत के कोटि-कोटि
देवता सुमन अंजलि भर-भर,
बरसाने आये यान चढ़े
देखा न किसी ने उनको पर।

रुक गये जहाँ, झुक गये वहीं
कितने ही पुर औ' ग्राम-नगर,
पुर-वधुओं से वधुएँ बोलीं—
आये हैं बापू नयनागर!

ले दूध-दही, ले पुष्प-पत्र
ले फल-अहार, वृद्धा आईं,
बापू के चरणों में संपति
की राशि झुकी, बलि हो आईं।

बन गया समर का क्षेत्र वही
जिस स्थल बापू के चरण रुके,
जुड़ गई सभा नर-नारी की
लग गई भीड़, तरु-पात रुके।

काँप उठीं दिशाये नीरव हो
छा गया एक स्वर निर्विकार,
भारत स्वतंत्र करने का प्रण
है यही, यही रण-मोक्ष-द्वार।

या तो होगा भारत स्वतन्त्र
कुछ दिवस रात के प्रहरों पर,
या, शव बन लहरेगा शरीर
मेरा समुद्र की लहरों पर!



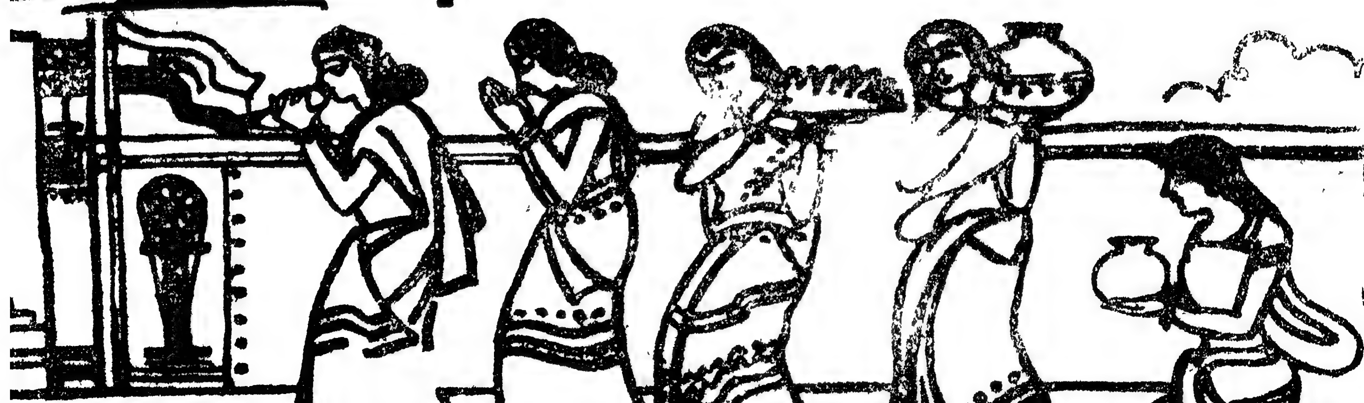




वह अचल प्रतिज्ञा गूंज उठी
तरुओं में पातों-पातों में,
वह अटल प्रतिज्ञा समा गई
जनगण की बातों-बातों में।

बरसाने की आ गई याद
धरसाने की उस यात्रा में।
हो गया ध्वंस साम्राज्य-बंध
जब लवण बना लघु मात्रा में।

नवयुग का नव आरंभ हुआ
कुछ नये निमक के टुकड़ों पर।
आज़ादी का इतिहास लिखा
डांड़ी के कंकड़-पथरों पर।





अनुनय

प्रेम के पागल पुजारी!
प्रेम के पागल भिखारी!

जल रही है आग घर में
जल रहा है घर तुम्हारा,
छेड़ते ही जा रहे तुम
प्रेम का निज एकतारा?

तुम अरे, कितने अनारी!
मातृ-भू क्योंकर बिसारी?

राष्ट्र का निर्माण हो जब,
विरह की ध्वनि तुम्हें भाई,
उठ सकेंगे किस तरह हम
जब तुम्हीं ने कटि झुकाई?

आज तुम पर लाज सारी,
प्रेम के पागल पुजारी!





आज है रण का निमंत्रण
धुन तुम्हें तब प्रीति से है,
आज अलकों से उलझते
जब उलझना नीति से है;

बात क्या उलटी विचारी?
प्रेम के पागल पुजारी?

विश्व के इतिहास में
उल्लेख क्या होगा तुम्हारा?
तुम रिझाते रूप थे,
जब पिस रहा था देश सारा!

यह कलंक असह्य भारी!
प्रेम के पागल पुजारी!

देश की आशा तुम्हीं हो,
राष्ट्र के भावी प्रणेता!
फिर विलास-विलीन कैसे?
इंद्रियों के चिर विजेता!

पार्थकुल के रक्तधारी!
प्रेम के पागल पुजारी!

रहे रूठी राधिका मत रुको,
मत उसको मनाओ,
देखती अपलक तुम्हें जो
लाज तुम उसकी बचाओ।

द्रौपदी नंगी उघारी,
नयन से जलधार जारी!





आज वंशी छोड़ दो लो
पाँचजन्य किशोर मेरे,
है खड़ी अक्षौहिणी
प्रतिशोध में कुरुक्षेत्र घेरे;

आज फिर रण की तयारी!
प्रेम के पागल पुजारी!

यह जवानी, ये उमंगें,
यह नशा, यह जोश भारी,
देश को दो भीख प्यारे,
जग पड़े क़िस्मत हमारी!

छिन्न हों कड़ियाँ हमारी,
जय मनायें हम तुम्हारी,

फिर सजे वंशी तुम्हारी
फिर बजे वंशी तुम्हारी।
प्रेम के पागल पुजारी
मातृ-भू क्योंकर बिसारी ?







शहीद

प्राणों पर इतनी ममता
औ' स्वतंत्रता का सौदा?
बिना तेल के दीप जलाने
का है कठिन मसौदा!

आँसू बिखराते बीतेंगी
जलती जीवन-घड़ियाँ।
बिना चढ़ाये शीश, नहीं
टूटेंगी माँ की कड़ियाँ।

दुनिया में जीने का सबसे
सुन्दर मधुर तक़ाज़ा।
हो शहीद! उठने दे
अपना फूलों भरा जनाज़ा।



नव झाँकी

घास पात के टुकड़ों पर
लुटती है माखन मिसरी
गंजी और जाँघिया पा
पीताम्बर की सुधि बिसरी।

चक्की की घरघर में भूला
लेकर चक्र चलाना,
बेतों की बेदर्द मार में
सुना वेणु का गाना।

जंजीरो ने चुरा लिया
वनमाला की छवि बाँकी,
देख सीकचों में आया हूँ
मोहन की नव झाँकी।



हथकड़ियाँ

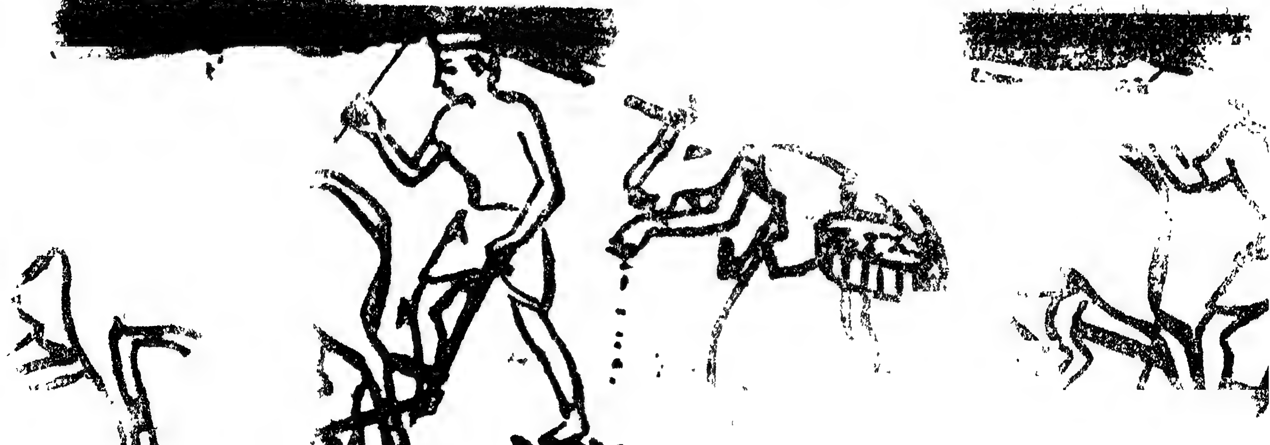
आओ, आओ, हथकड़ियाँ
मेरी मणियों की लड़ियाँ !

मातृभूमि की सेवाओं की
स्वीकृति की जयमाल भली,
कृष्ण-तीर्थ ले चलनेवाली
पावन मंजुल मधुर गली;

जीवन की मधुमय घड़ियाँ !
आओ, आओ, हथकड़ियाँ !

कर में बँधो विजय-कंकण-सी,
उर में आत्मशक्ति लाओ,
जन्मभूमि के लिए शलभ-सा
मर जाना, हाँ, सिखलाओ;

स्वतन्त्रता की फुलझड़ियाँ !
आओ, आओ, हथकड़ियाँ !

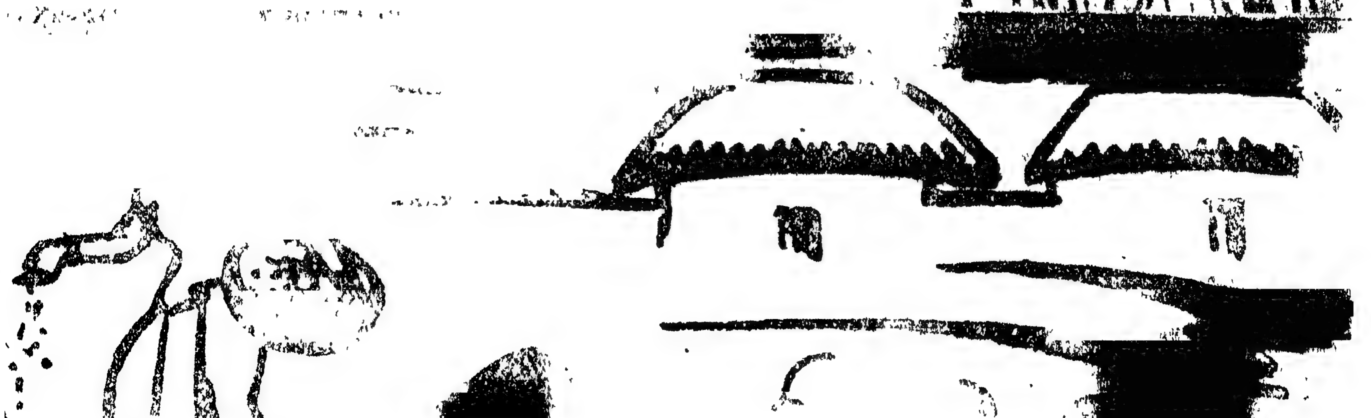




नववर्ष

स्वागत ! जीवन के नवल वर्ष
आओ, नूतन-निर्माण लिये,
इस महा जागरण के युग में
जाग्रत जीवन अभिमान लिये;

दीनों दुखियों का त्राण लिये
मानवता का कल्याण लिये,
स्वागत ! नवयुग के नवल वर्ष !
आओ तुम स्वर्ण-विहान लिये !





संसार-क्षितिज पर महाक्रान्ति
की ज्वालाओं के गान लिये,
मेरे भारत के लिए नई
प्रेरणा और नया उत्थान लिये;

मुर्दा शरीर में नये प्राण
प्राणों में नव अरमान लिये,
स्वागत! स्वागत! मेरे आगत!
आओ तुम स्वर्ण-बिहान लिये!

युग-युग तक नित पिसते आये
कृषकों को जीवन-दान लिये,
कंकाल-मात्र रह गये शेष
मजदूरों का नव त्राण लिये;

श्रमिकों का नव संगठन लिये,
पददलितों का उत्थान लिये;
स्वागत! स्वागत! मेरे आगत
आओ! तुम स्वर्ण-बिहान लिये!

सत्ताधारी साम्राज्यवाद के
मद का चिर-अवसान लिये,
दुर्बल को अभयदान
भूखे को रोटी का सामान लिये;

जीवन में नूतन क्रान्ति
क्रान्ति में नये नये बलिदान लिये,
स्वागत! जीवन के नवल वर्ष
आओ, तुम स्वर्ण-बिहान लिये!





त्रिपुरी कांग्रेस

था प्रात निकलने को जुलूस
जुड़ रात-रात भर नर-नारी,
उत्सुक बैठे पथ पर आकर
कब रथ निकले सज-धजधारी।

चल ग्राम-ग्राम से नगर-नगर से
वृद्ध बाल आये अगणित,
करने को लोचन सफल आज
भर देश-प्रेम से पावन चित।

पिसन्हरिया की मढ़िया सुन्दर
है जहां बनी गिरि के ऊपर,
कलचुरी-राज्य के गौरव का
ज्यों यशःस्तंभ हो उठा प्रखर;

बस, उसी स्थान से उठना था
यह त्रिपुरी का जुलूस भारी,
सारे भारत में हलचल थी
सुन-सुनकर जिसकी तैयारी!





बावन वर्षों की याद लिये
आये बावन हाथी मतंग,
इतिहास-पटल पर लिखने को
मतवालों के मन की उमंग।

सन् उन्तालिस की ग्यारह को
जब रात बदलकर बनी उषा,
जनगण में कोलाहल छाया
मन-प्राणों में छा गया नशा।

हो गये खड़े पथ पर सजकर
रथ लेकर, गज दिग्गज काले,
खींचने राष्ट्ररथ को आये
जयपथ पर ज्यों रण-मतवाले!

उस कुरुक्षेत्र की याद आ गई
सहसा इस कवि के मन में,
जब पाँच गाँव के लिए मचा
था यहाँ महाभारत क्षण में।

यों ही तब दिग्गज शूरवीर
प्रातः होते ही रणपथ पर,
बढ़ते होंगे ले ध्वजा शिखर
योधा बैठे होंगे रथ पर।

छाई पूरब की लाली में
ज्यों ही दिनकर की उजियाली,
बज उठे शंख, दुंदुभि, मृदंग
मारू बाजे वैभवशाली।





बावन हाथी जुड़ गये
एक से लगे एक पीछे आगे,
बावन सारथी सवार हुए
जो मातृभूमि-पद-अनुरागे।

सिर पर विशुभ्र गांधी-टोपी
तन पर खादी के शुभ्र वस्त्र,
ये युद्ध चले करने योधा
जिनके न हाथ में एक शस्त्र।

घन घन घन घन घंटा बोले
झन झन झन झन बाजी रणभेरी,
चल पड़ा हमारा यह जुलूस
पल में फिर लगी न कुछ देरी।

रथ था विशुभ्र ज्यों सत्य स्वयं
हो मूर्तिमान वाहन बनकर,
आया हो ले चलने हमको
पावन स्वराज्य के जय-पथ पर।

था तरल तिरङ्गा लहर रहा
रथ के मस्तक को किये तुंग,
अभिनंदन में दिखलाते थे
झुकते से सब सतपुड़ा-शृङ्ग,

सतपुड़ा-शृङ्ग, जिनमें बैठे थे
उत्सुक अगणित नरनारी,
चित्रित कर दी विधि ने जैसे
उनमें विचित्र जनता सारी।





जब चला हमारा यह जुलूस
तब कोटि कोटि उत्सुक दर्शक,
भर भर हाथों में नव प्रसून
बरसाने लगे, नयन अपलक!

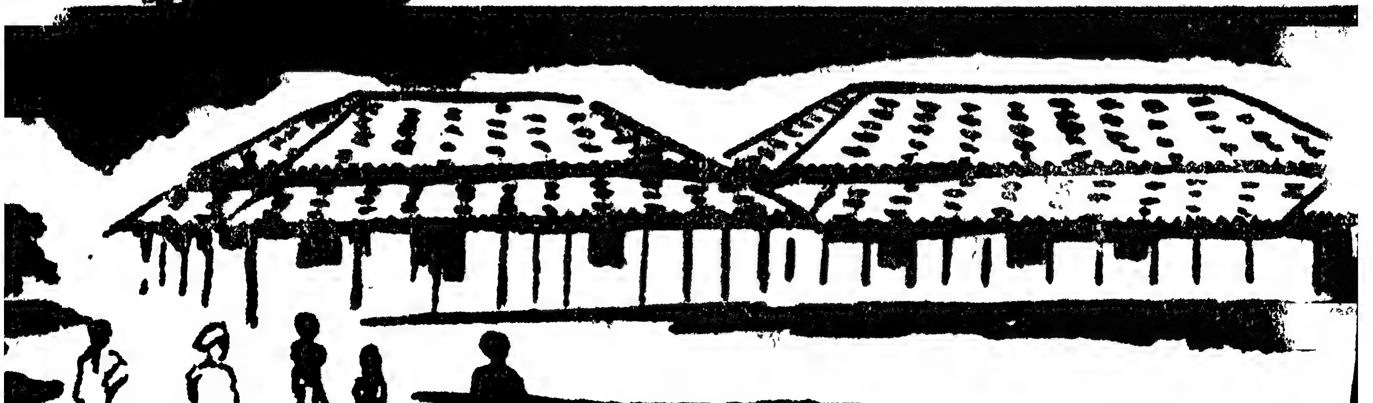
पलकें अपलक, वाणी अवाक्
अन्तस गद्गद, तन पुलक भरे,
जागरण देख यह भारत का
दृग में सुख के नव अश्रु ढरे!

वह धन्य देश! जिसमें उठते
पज्वलित याद कर निज गौरव,
बलिवेदी पर बढ़ते शहीद
लाने को फिर स्वदेश वैभव।

नर्मदा इधर दक्षिण तट पर
गाती थी स्वागत-गीत गान।
सतपुड़ा उधर था हर्षफुल्ल
शिर विनत किये पथ में अजान!

सौभाग्य महाकोशल का था
जो गौरव-मंडित भुका भाल,
श्री कर्णदेव का गौरव ले
अभिनंदन करता था विशाल!

जागो फिर, मेरे कर्णदेव!
देखो आया है स्वर्ण-काल,
फिर, चला महाकोशल लिखने
भारत-जननी का भाग्य-भाल।



बढ़ रहा गोंडवाना फिर से
नापने देश की परिधि छोर।
जनगण जागे पददलित पुनः
जनरण का उठता महा रोर!

जागो फिर, सोये कर्णदेव;
कर लो हर्षित अपने लोचन,
त्रिपुरी से सजकर चली आज
फिर, गजसेना, घंटा-ध्वनि घन!

जागो फिर, मेरे कर्णदेव;
जग रहा तुम्हारा पुण्यपूर्व,
तुम चले आज निर्मित करने
सुखमय स्वराष्ट्र अभिनव अपूर्व!

बावन सर बावन दर्पण बन
थे चित्र खींचते मौन जहाँ,
बावन वर्षों का वैभव ले
कांग्रेस झूमती चली वहाँ;

झूमी प्रतिपल गजगति बनकर
झूमी प्रतिपल गज-रथ चढ़कर
झूमी पग-पग में मग-मग में
जगमग मनकर, रण में बढ़कर।

पांचाल चला अभिमान लिये,
बंगाल चला बलिदान लिये,
मद्रास बढ़ा उत्थान लिये,
सी० पी० स्वागत के गान लिये।



P. G. H 1949





गुजरात गर्व लेकर आया
बनकर पटेल की लौहमूर्त्ति,
राजेन्द्र किरीट सँवार चला
उत्कल बिहार बन प्राणस्फूर्त्ति;

ईसा की नव प्रतिमूर्त्ति लिये
आया सुन्दर सीमांत प्रांत,
ले वीर जवाहर को पहुँचा
जननी का उर--यह हिंद प्रांत।

राजा जी की ले सौम्यमूर्त्ति
मद्रास चला नवगर्व लिये,
सौभाग्य चंद्र बंगाल लिये
जिसने नित अरिमद खर्व किये;

कितने ही यों ही देशरत्न
जिनके न रूप औ' ज्ञात नाम,
जन-सागर के तल में विलीन
भरते थे बल विक्रम प्रकाम।

बाजे बजते थे घमासान,
थे फड़क रहे सब अंग-अंग,
नस-नस में वीर भाव जागा
बह चली रक्त में नव उमंग;

जब बावन दिग्गज चले संग
अपने भारी डग पर धर डग,
तरणी रेवा में डोल उठी,
धरणी हो उठी विचल डगमग!



जयघोषों की तुमुल ध्वनि में
यह बढ़ा महोत्सव आगे फिर,
पहुँचा, था जहाँ लहर लेती
भारत की ध्वजा व्योम को तिर;

त्रिपुरी क्या बसी, अनूपम छबि
जैसे हो त्रिपुरी राज्य उठा,
धरणी के स्तर को चीर
पुरातन कोशल का साम्राज्य उठा;

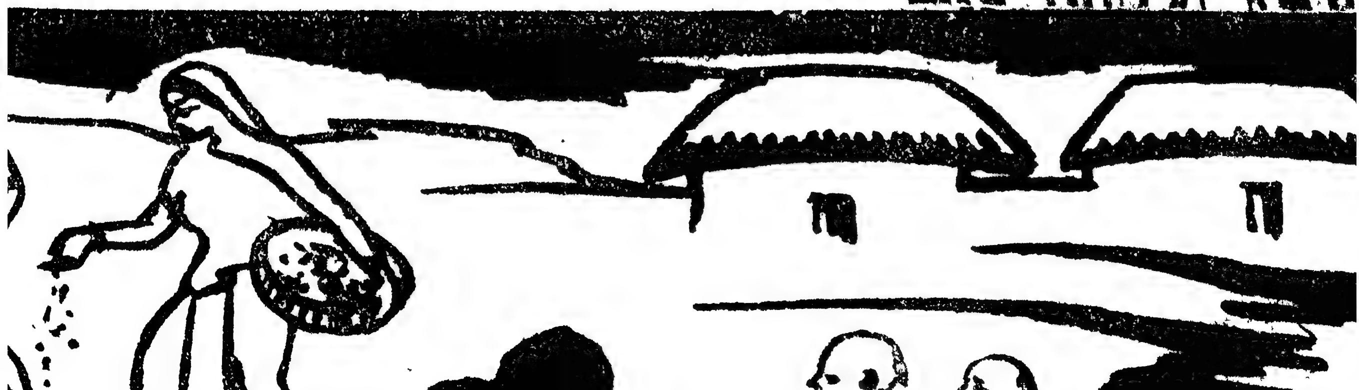
उठ आये उसके सिंह-द्वार
उठ आईं गुंबद मीनारें,
मेहराब उठे, शुचि शृङ्ग उठे
ध्वज, तोरण, कलसी, मीनारें।

झंडा-मंडप में आ करके
यह समा गया अगणित सागर,
झुक गये शीश रणवीरों के
था विजय-केतु उड़ता नभ पर।

था सजा मातृ-मंदिर पावन
सतपुड़ा शिखर के कोने में,
भारत-जन-सागर सिमट गया
नर्मदा नदी के दोने में;

विंध्याचल, पुण्य पुरातन गिरि
उठता ऊपर ले अतुल गर्व,
वह आज हिमाचल से उज्ज्वल
जिसके गृह में जागरण-पर्व।







गौरीशंकर के शुभ्र शृङ्ग
मटमैले गिरि पर बलि जाते,
जिसने आमंत्रित किया
देश के वीर बांकुरे मदमाते;

विंध्याचल, मा की कटिकिंकिणि,
बज उठा आज हर्षित अपार,
जिनके पथ हेरा उत्कंठित
वे आये हैं देवता-द्वार;

भारत के कोटि-कोटि देवी-
देवता अतिथि हैं विंध्या में,
पर्वत-पर्वत पर गिरि-गिरि पर
दीवाली सजती संध्या में।

विंध्याचल, जिसके पंख कटे
हैं आज न उड़ सकता ऊपर,
अन्यथा, बना पुष्पक विमान
यह मड़राता फिरता भू-पर!

क्या बतलाऊँ क्या था जुलूस ?
यह है वह युग-युग का सपना।
भारत में जब होगा स्वराज्य
भारत यह जब होगा अपना;

टूटेंगी अपनी हथकड़ियाँ
ढह जायेगा यह राजतंत्र,
होगी भारत-जननी स्वतंत्र
होंगे भारतवासी स्वतंत्र।





चित्रकार : श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

खादी ही बढ़, चरणों पर पड़,
नूपुर सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी
आज़ादी को घर लायेगी।



अभियान-गीत

उठो, बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत - सम्मान करो,
वीर सिपाही बन करके
बलिवेदी पर प्रस्थान करो।

तन पर खादी सजी निराली
मन में देशभक्ति मतवाली,

कर में हो स्वराज्य का झंडा
उर में मा का ध्यान करो।
उठो, बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत सम्मान करो।

लिये सत्य करवाल हाथ में
लिये अहिंसा ढाल साथ में,



बढ़ो, बीर बाँकुरे समर में
घोर युद्ध घमसान करो,
उठो, बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत - सम्मान करो।

जब तक एक रक्त कण तन में
पीछे हटो न तिल भर प्रण में,

विजय-मुकुट है हाथ तुम्हारे,
दृढ़ हो जीवन-दान करो;
उठो, बढ़ो आगे, स्वतन्त्रता का
स्वागत - सम्मान करो।

राजवंदी के प्रति

बने वंदिनी के वंदन में
वंदी तुम भी आप,
निखरेगी इससे अब प्रतिभा
गरिमा शक्ति अमाप!

खादी, चर्खा, देशभक्ति औ'
स्वतंत्रता की साध,
हे भारत के पुत्र! तुम्हारा
यही घोर अपराध!

जाओ उस कारागृह में
जो बना युगों से पूत,
जहाँ शान्ति के दूत बने थे
अमर क्रान्ति के दूत।

जहाँ महात्मा, तिलक, लाजपत
कितने अमर शहीद,
अपने पदचिह्नों से कर
आये हैं पीठ पुनीत।

फा० ११





जहाँ देश के आज जवाहर
लाल अनेकों बंद,
करने को निर्बंध देश को
लो,—बंधन स्वच्छन्द।

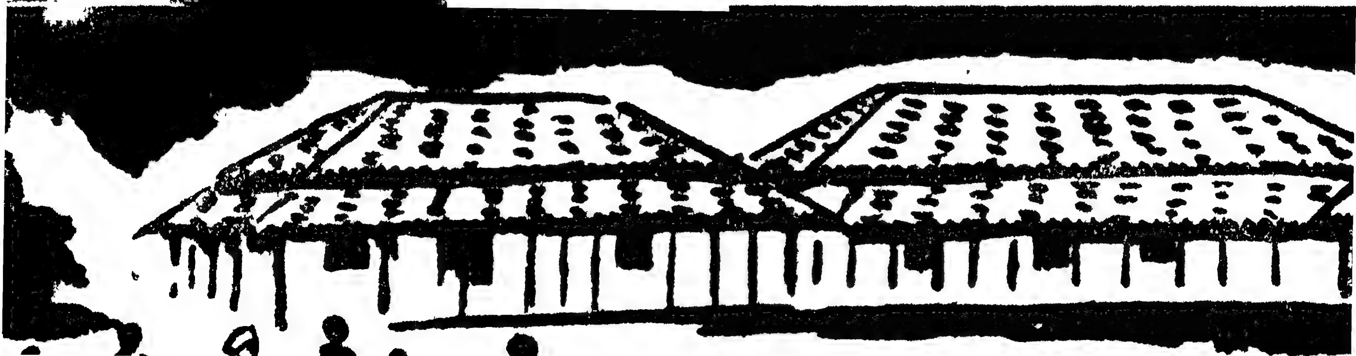
सिंहासन तुम चले उलटने
ओ विद्रोही वीर!
इसीलिए, यह दंड—
तुम्हारे हाथों में जंजीर।

सिखलाया तुमने भारत के
तरुणों को षड्यंत्र,
'बनो स्वतंत्र, पूर्व गौरव हो'
कितना विषधर मंत्र?

आज इसी से मिला तुम्हें यह
कड़ियों का वरदान,
देखो—खिलती रहे अधर पर
यह मोहक मुसकान।

धन्य तुम्हारा जीवन दिन है
धन्य आज ये घड़ियाँ,
जयमाला शरमाती मन में
देख हाथ हथकड़ियाँ!

हाथ पाँव बाँधे वे चाहें
जितना है अधिकार,
जंजीरों से क़ैद न होगी
आत्मा मुक्त अपार।



कल तुम चले, आज हम आते
परसों उनकी बारी,
स्वागत का क्रम यही रहा तो
घर घर है तैयारी।

बाहर भी हम क्या हैं?
सारा भारत कारागार,
क्या कह सकते भी मन के
अपने मुक्त विचार?

पूछ रहे हो किया कौन सा
था तुमने अपराध?
जीवन भर क्या किया—
जगाई कौन सलोनी साध?

फूंका था विद्रोह शंख
क्या कभी नहीं तुमने ही?
खोले थे ये बँधे पंख
क्या कभी नहीं तुमने ही?

फिर, बापू से षड्यंत्री से
किया खूब संपर्क,
पिया प्रेम से छुप चुप तुमने
आत्म - शक्ति - मधुपर्क।

टूटें लौह - शृंखलायें
हो अपनी भीड़ अपार,
ढहे खड़ी ऊँची कराल
कारागृह की दीवार!





बेतवा का सत्याग्रह

गंगा से कहती थी यमुना
तुम बहन, दूर से आती हो,
जाने कितने ही प्रान्त नगर
छू करके तीर्थ बनाती हो।

कुछ कहो बहन, ना आज
देश की ऐसी पावन नव्य कथा,
जिससे जागृति की ज्योति मिले
यह भिले हृदय की तिमिर-व्यथा!

गंगा बोली, यमुने! तुम भी
करती हो मुझसे अठखेली?
तुम मुझसे पूछ रही रानी!
कुछ नये रंग की रँगरेली?

तुमने वंशी का गान सुना,
तुमने गीता का ज्ञान सुना,
यमुने! तुमको क्या बतलाऊँ?
तुमने सब वेद पुराण सुना।



छोड़ो उन वेद पुराणों को,
छोड़ो गीता के गानों को,
कुछ नवयुग की प्रिय बात कहो,
छोड़ो भूले आख्यानों को।

तो नवयुग की तुम सखी बनी
नवयुग की तुमको लगी हवा,
आ तो दूँ तुझको एक धौल
हो जाये तेरी ठीक दवा।

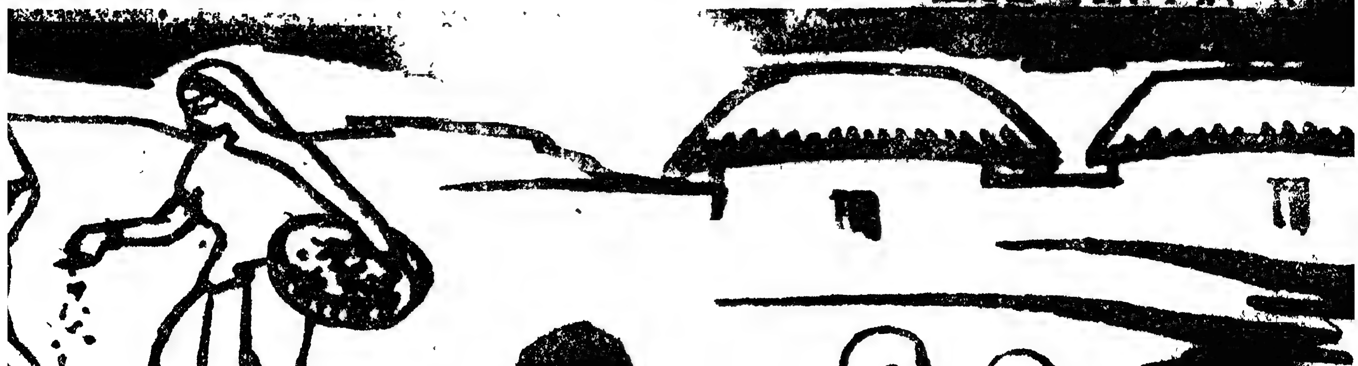
यमुने! तुम कितनी भोली हो?
भूली बन बात बनाती हो,
भूले जा सकते क्या मोहन
तुम मन की बात चुराती हो।

मैं छीन नहीं लूँगी तुमसे
गोदी से श्याम सलोने को,
तुम बात बनाकर यों न लगाओ
काजल श्याम दिठौने को।

यमुने! तुम सदा सुहागिल हो
तुमको प्यारे घनश्याम रहें,
गंगा गरीबिनी नहीं, धनी है
घर में राजाराम रहें।

यमुने! भूला जा सकता है
क्या गीता का भी अमर गान?
जो है अतीत का गर्व लिए
घेरे भविष्य औ' वर्तमान।







रानी ! मेरी तुम भूल गईं
इतिहास स्वयं दुहराता है,
वह कुरुक्षेत्र का मनमोहन
अवतार नये धर आता है ।

होता है फिर से द्वंद्व-युद्ध
वह भारत नहीं अंत होता,
कौरव पांडव फिर लड़ते हैं
धीरज हा हंत ! विश्व खोता।

भूमिका बहुत तुम बांध चुकीं
अब तुम अपना मंतव्य कहो,
किस ओर चाहतीं ले जाना
वह मर्म कथा, गंतव्य कहो।

गंगा बोली—मेरी सजनी
मत आपस में यों रार करो,
लो सुनो कथा मैं कहती हूँ
अब सुनो हृदय उल्लास भरो।

बुंदेलखंड जनपद महान
गूँजे हैं जिसके अमर गान,
मैं आज उसी की कहती हूँ
लघु कथा, किंतु अति कीर्तिवान।

बुंदेलखंड, सुन्दर स्वदेश
बेतवा जहाँ गलहार बनी,
बहती रहती सींचती धरा
वन उपवन में शृङ्गार बनी।



बुंदेलखंड, गौरव अखंड
जिसके वर वीर लड़ैतों ने,
कंपित दिगंत को किया
जिसे वर्णित है किया अल्हैतों ने।

इस नवयुग में भी नये वीर
ध्रुव धीर जहाँ पर वर्तमान,
जिसके बलिमय सत्याग्रह
के गीतों से अंबर गीतमान!

हम्मीरदेव का गौरवस्थल
अब भी हमीरपुर बसा जहाँ,
बेतवा जहाँ इठला इठला
खेला करती है यहाँ वहाँ।

थे एक दिवस, कुछ कृषक
जा रहे जिनके पास छदाम नहीं,
बेतवा पार कर, बेचारों के
धाम बने थे, जहाँ, वहीं।

घाटिया देखकर आ पहुँचा
बोला--'बदमाशो! चोरी कर,
आ पहुँचे तुम इस पार, इस तरह
अच्छा दो अब अपना 'कर'।'

देते क्या दीन दुखी किसान?
पैसा भी होता पास कहीं,
तो क्यों जाते जल में हिलकर
जाते क्यों चढ़कर, नाव नहीं?







ले किसान, 'सरकार!
कुछ भी पैसा पास नहीं अपने,
कर दूर घाट से हिल करके
आये इस पार यहाँ, हम ये।'

मैं कुछ न जानता हूँ
करते हो बहस, उतारो तो कपड़े,
नंगे जाओ अपने घर को
दिखता बहुत तुम हो अकड़े।'

घाटिया बड़ा था क्रूर, निठुर
उसको था धन से बड़ा लोभ,
यदि छूट जाय धेला तो भी
होता था उसको बड़ा क्षोभ।

घाटिया बेरहम हुआ, कहा—
आओ मेरे ओ जमादार!
ये बहस बहुत मुझसे करते
आये करके बेतवा पार!

'हूँ घाट छोड़कर आये हम
कहते 'कर' तुम्हें नहीं देंगे',
'ले लो कपड़े लत्ते इनके
जो करना हो, ये कर लेंगे।'

जैसे मालिक, वैसे नौकर,
वे कड़े कसाई-से थे फिर,
बोले—'खोलो कपड़े लत्ते
वरना, हंटर खाओगे फिर।'

अधनंगे यों ही रहते हैं
भोले भाले मारे किसान,
उस पर प्रहार यह हा! विधिना!
यह न्याय निठुर तेरा महान!

कपड़े लत्ते खुलवा करके
उनको वे करके चपत चार,
भेजा दे एक लँगोटी भर
इस निर्धनता में कड़ी मार!

ये देख रहे इस नाटक को
कुछ सहृदय सज्जन वहीं खड़े,
उनका मन भी फट गया यदपि
ये जी के वे भी खूब कड़े।

सोचा—यह तो है अनाचार
अपने उन दीन किसानों पर,
हम फलते और फूलते हैं
बलि पर, जिनके एहसानों पर!

वे चले गए, रोते धोते
नंगे अधनंगे, ठिठुर ठिठुर,
पर, क्रूर घाटिया-सा तो होता
सबका हिरदय नहीं निठुर!

जो अश्रु गिरे थे धरती पर
वे अंगारे बनकर सुलगे,
ये खड़े देखते जो दर्शक
उनके मन में बन आग जगे!





जो खड़े हुएँ थे तेजस्वी
उनके कुल का सम्मान जगा,
हम खड़े रहें—हो अनाचार
उनके मन का अभिमान जगा !

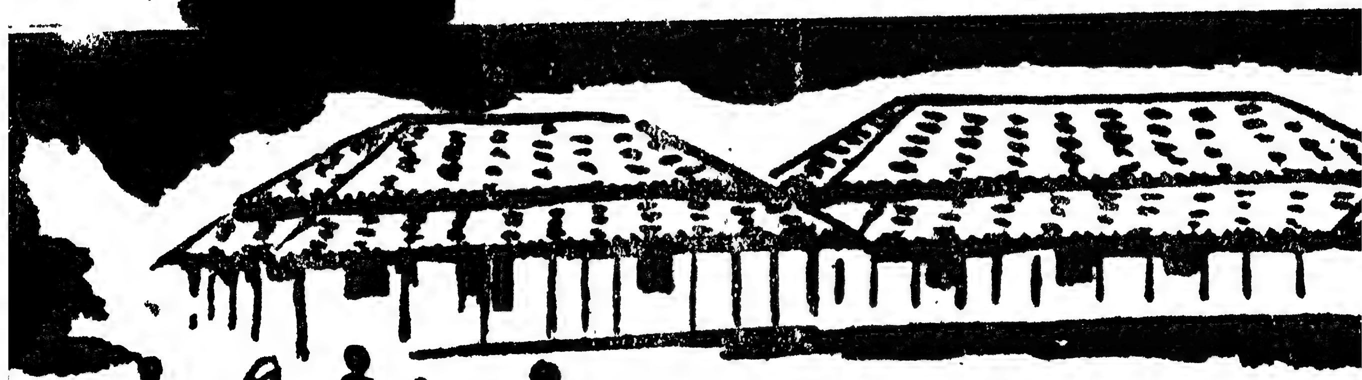
तो धिक है ऐसे जीवन पर
यदि हमीं मरे, तो जिया कौन ?
इसका प्रतिकार करेंगे हम
थी हुई प्रतिज्ञा आज मौन ?

प्रतिकार करेंगे हम इसका
जो भी हो कारा फांसी हो,
अन्याय न देखेंगे अब फिर
जीवन है ही कितना दिन दो !

वे धन्य वीर ! अन्याय देखकर
जिनका खून उबल पड़ता,
वे धन्य धीर ! बलि होने को
जिनका हो प्राण मचल पड़ता !

ऐसे ही तो दो चार सत्य-
बल वालों से धरती स्थिर है,
अन्यथा न जाने कितनी ही बेला
यह धँस, उबरी फिर है।

घाटिया जुल्म करता रहता
पर, यह ज्यादती घटाने को,
तैयार हुए कुछ मतवाले
कर का अन्याय मिटाने को।



जिस मनमोहन की वंशी से
निद्रित भारत यह जाग उठा,
उसके ही कुछ गोपों का दल
बलि होने को अनुराग उठा।

जन जन में यह चर्चा फैली
मन मन में यह कौतूहल था,
सत्याग्रह का था दिवस कौन?
पुर नगर प्रान्त में हलचल था!

रणभेरी बाज उठी घर घर
दर दर से सजा जुलूस चला,
बेतवा नदी सत्याग्रह को
देखने सभी जनगण उमड़ा।

ये तपसी तेजस्वी महान
जो देख न सकते अनाचार,
थे एक ओर, दूसरी ओर
घाटिया और थे जमादार।

बेतवा किनारे लगा हुआ था
आज अनोखा ही मेला,
बुंदेलखंड था उमड़ पड़ा
आई नवजीवन की बेला!

संघर्ष आज दोनों का था
जनता से औ प्रभुसत्ता से,
संघर्ष आज दोनों का था
लघुता से और महत्ता से।







प्रतिबिम्ब पड़ रहा था जल में
बुंदेलखंड के वीरों का,
जिनके चंदन-चर्चित मस्तक
अर्चित सहृदय वरवीरों का।

बेतवा स्वयं ही दर्पण बन
बैसे उनकी छवि झांक रही,
शत शत आँखों शत शत छवि भर
अंतर में गरिमा आँक रही।

थे ब्रिटिशराज के राजदूत
शासकगण अपनी सैन्य लिए,
थे इधर बुंदेलों के सपूत
पावन थे जिनके स्वच्छ हिए।

उन देशव्रती मतवालों की
रणभेरी बाजी थी पहले,
बेतवा करेंगे पार—आज हम
थे घाटिया सभी दहले।

बेतवा आज लहराती थी
लहरों में थी नूतन उमंग,
युग युग में आज बुंदेलों के
मुख पर चमका था रक्तरंग!

कुछ तो जीवन इनमें जागा
कुछ तो यौवन इनमें जागा,
युग युग में सही, आज तो था
प्राणों का अलस तिमिर भागा।

आल्हा ऊदल की स्वर्गात्मा भी
तृप्त हुई होगी मन में,
जागे तो अपने कुछ जवान
जीवन तो है कुछ जन जन में।

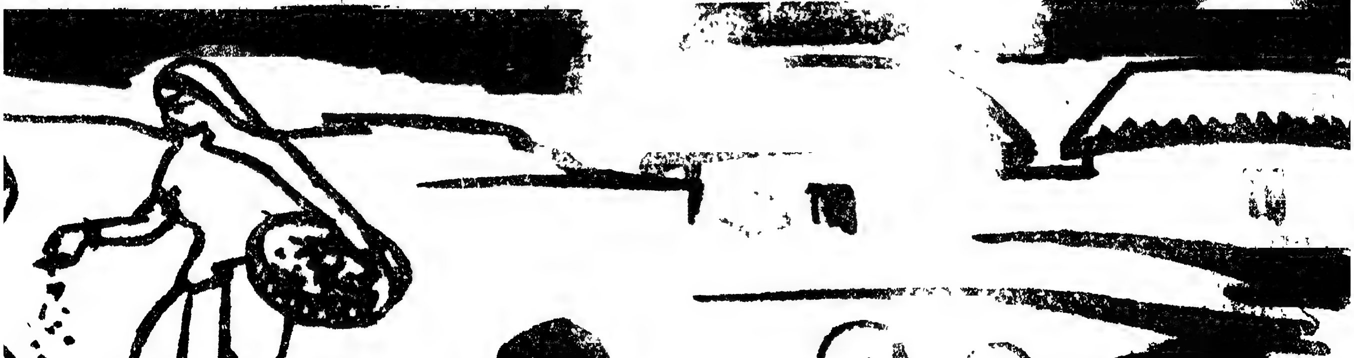
है नहीं आज तलवार खड्ग
आत्मा पर, खूब चमकती है,
बलि होनेवालों के आगे
असि कुंठित बनी दबकती है।

बोलो भारत माता की जय
बोलो जनगणत्राता की जय!
गूंजी जय-ध्वनि यों बार बार
बढ़ चले वीरवर इधर अभय!

हथकड़ी बेड़ियां लिए खड़े थे
उधर लाल पगड़ीवाले,
ये इधर चले बेतवा पार
करने अपने कुछ मतवाले।

बेतवा सोचती धन्य भाग्य!
मैं इनके चरण पखार रही,
जो चले न्याय पर मिटने को
मैं जी भर उन्हें निहार रही।

लहरें आ आ बलखाती थीं
पल पल आ आ इठलाती थीं,
जाने था उनको हर्ष कौन
गुपचुप गुपचुप बतलाती थीं—





कहती थीं—है जाग्रत स्वदेश
अब जागेगा बुंदेलखंड,
आया है नवयुग का प्रभात
होगा फिर निज गौरव अखंड।

जब बिना शस्त्र ही लड़ने को
इन वीरों में जागा गौरव,
तब कौन रोक सकता उनको
आत्माहुति हो जिनका वैभव ?

उन्नत ललाट नवतेज लिए
मुख पर नव श्री थी खेल रही,
जाने किस तपसी की आभा
थी सभी भीरुता झेल रही।

जैसे हो सत्य स्वयं ही आ
कर श्री का मंडल बाँध रहा,
सब निष्प्रभ थे इनके समक्ष
ऐसा था ज्योति-प्रवाह बहा।

आँखों में थी करुणा बहती
अधरों पर थी मुसकान भरी,
उर में उमंग स्वर में तरंग
थी नूतन दिव्य ज्योति निखरी !

जयमाल लहरती थी
वक्षस्थल पर देवों की वरमाल बनी,
ये देवमूर्ति से थे त्रिमूर्ति
जिनको पा थी बेतवा धनी !

टूटी पड़ती थी भीड़ देखने
को वीरों का महोत्साह,
व्याकुलता, उत्सुकता, उत्कंठा,
सबका था अद्भुत प्रवाह।

थी एक मधुर-सी स्पृहा अमर
तब जन गण-मन में जाग रही,
जग रही एक थी आत्मशक्ति
भीरुता सभी थी भाग रही।

सबके मन में यह भाव जगा
था नूतन एक प्रभाव जगा।
सब कुछ होकर भी कुछ न हुए
सब में था एक अभाव जगा।

यदि होते सत्याग्रही, सत्य के
लिए अभय आगे बढ़ते,
तो होता जीवन-जन्म सफल
हम भी तब सुयश-शिखर चढ़ते।

हैं धन्य! यही हम देख रहे
आँखों के आगे वीर-कर्म।
अन्याय मिटाने जाते जो
यह दर्शन भी है पुण्य-धर्म।

ये ब्रिटिश राज के दूत—जिला
के अधिपति और दारोगा भी,
मत इधर बढ़ो, अन्यथा बनोगे
बंदी, उनको रोका भी।







क़ानून भंग कर रहे, समझते
हम, इसका है हमें ध्यान,
तुम क़ैद करो, बंदी कर लो
दो दंड कहे जो भी विधान!

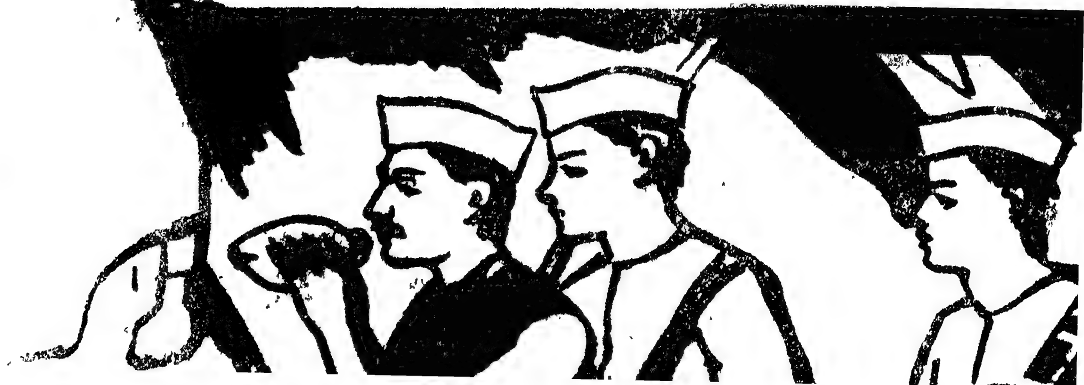
है मान्य सभी, पर न्याय
यही कहता है हमसे बार बार--
कर उसे नहीं देना चाहिए
जो घाट छोड़कर करे पार।'

कर लो बंदी इनको इनने है
अभी न्याय को भंग किया,
कारागृह ले जाओ इनको
इनने कारागृह स्वयं लिया।

पड़ गईं हाथ में हथकड़ियाँ
वे जीवन की मधुमय घड़ियाँ,
हम जिन्हें पहनकर खंड खंड
करते हैं लोहे की कड़ियाँ।

भारत माँ की जयकार हुई
कूलों में और कछारों में,
गाँधीजी की जय जय गूँजी
लहरों में और कगारों में।

कारागृह भेजे गए वीर
वे चले हर्ष से मुसकाते,
जो बढ़ते दुःख मिटाने को
वे दुःख नहीं मन में लाते।



घर घर में ही कौतूहल था
दर दर में उनकी चर्चा थी।
स्वर स्वर में उनका नाम चढ़ा
उर उर में उनकी अर्चा थी।

बैठे हैं न्यायाधीश आज
न्यायालय में जनता उमड़ी,
न्यायालय में आये बंदी थी
हाथों में हथकड़ी पड़ी।

अधरों पर थी मुसकान मंद
मुख पर नवतेज छलकता था,
ये अपराधी हैं नहीं, वीर हैं
रह रह भाव झलकता था।

युग परिवर्तन का युग आया
अब चल न सकेगा अनाचार,
सोई जनता है जाग उठी
युग-धर्म रहा सबको पुकार।

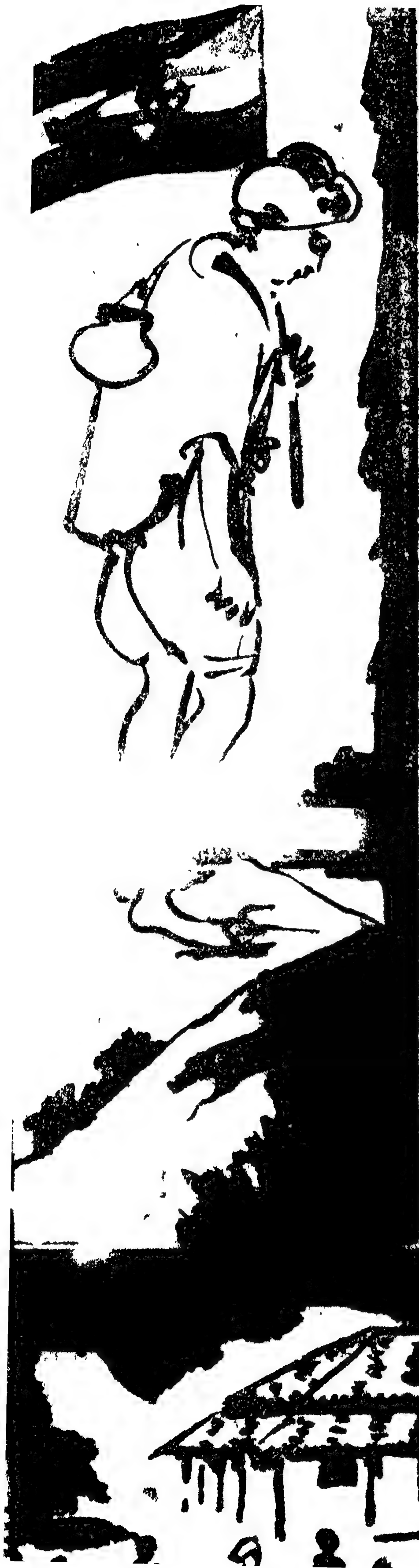
रह रह बढ़ती थी अधिक भीड़
रह रह जनता होती अधीर,
क्या दंड बंदियों को मिलता
था एक प्रश्न, थी एक पीर।

क्या निर्णय न्यायाधीश करें
क्या बने आज सबका विधान?
ये दोषी हैं या नहीं यही
जिज्ञासा थी सबमें समान।

फा. १३







है घाट एक ही सीमा तक
हो सकता घाट असीम नहीं,
फिर सभी किनारे कर लेना
हो सकता है यह न्याय नहीं ?

गंभीर थके चिंतन में पड़
जज उठे, भीड़ भी उमड़ पड़ी,
क्या निर्णय होता ? सुनने को
जनता थी आकर द्वार खड़ी।

जज बोले–'नहीं घाट की सीमा
की है बनी जहां रेखा,
उसके भीतर आकर 'कर' देना
है नहीं कहीं हमने देखा।

जो भी सीमा को छोड़
घाट से दूर, नदी से हैं आते,
उन पर, 'कर' नहीं लिया जा सकता
किसी न्याय के भी नाते।

ये अपराधी हैं नहीं, नहीं
अपराध यहां कोई बनता,
इसलिए, मुक्त ये किए गए
हर्षध्वनि में डूबी जनता !

इन धीर वीर बुंदेलों ने
अपने मस्तक पर ले प्रहार,
कर दिया सदा के लिए बंद
दीनों दुखियों का अनाचार।

ये धन्य अग्रणी ! दीन-बंधु
जो उठा गरल को पीते हैं,
ये शिवशंकर, ये प्रलयंकर
जग को अमृत दे जीते हैं।

उन वंदीजन की अरुणाभा
थी विजय आरती साज रही,
गाने को स्वागत---विजय-गीत
थी सुकवि भारती साज रही !

हो गया घाटिया पीत वर्ण
हत कान्ति-दर्प अभिमान गया,
नत मस्तक वह लौटा अधीर
उसका दर्पित अरमान गया।

तीनों ही थे हो गए मुक्त
कर हुआ मुक्त, अन्याय युक्त,
वे आये दीन किसान जहाँ
जो थे पहले ही दुःख युक्त !

जिनके कपड़े लत्ते लेकर
घाटिया बहुत ही अकड़ा था,
अन्यायी का था गर्व गलित
न्यायी का ऊपर पलड़ा था।

जनता में आया जोश कहा---
'सब चलो बेतवा पार करें,
अधिकार मिला, उपयोग करें
युग युग का यह अन्याय हरें।





जागी होगी करुणा अवश्य ही
उस दिन, जगन्नियंता की,
संकल्प उठा जिस दिन मन में
वे चले वीरवर एकाकी!

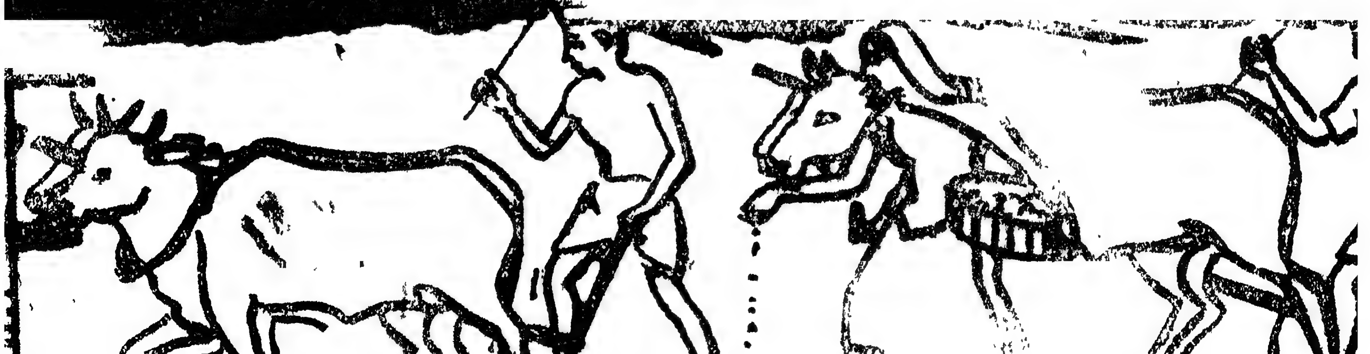
कुछ अस्त्र नहीं, कुछ शस्त्र नहीं,
कुछ सेना, साथी साथ नहीं,
ये चले युद्ध करने केवल
था सत्य न्याय ही शक्ति यहीं!

उन रघुपति की आ गई याद
जो एक दिवस थे इसी भाँति,
चल पड़े युद्ध करने प्रबुद्ध
पैदल, रथ गज की थी न पाँति।

बरसी थी नभ से सुमन - राशि
उन रघुवंशी वर वीरों पर,
दशमुख बिंध पद पर लोट गए
जिनके तेजस्वी तीरों पर।

अब तो क्या था? वह सभी भीड़
पानी में उतरी पाँव पाँव,
उस पार चली, इस पार चली
था आज न घाटिया का न नाँव।

यह था न, घाटिया हो न वहाँ
पर आज पराजित बना मूक,
देखता रहा सब जड़ बनकर
उर में उठती थी एक हूक।



वह भी था वीर बुंदेलखंड का
उसमें भी था एक हृदय,
था सोते से जागा जैसे
बोला बुंदेलवीरों की जय।

वह सत्याग्रह, वह जागृति-क्षण
जय ध्वनि जो गूंजी प्रहरों में।
है लिखा मौन इतिहास आज
बेतवा नदी की लहरों में।

घाटिया और वे जमादार
थे किए जिन्होंने अनाचार,
आये लज्जा से विगलित हो
नत मस्तक दृग में सजल धार।

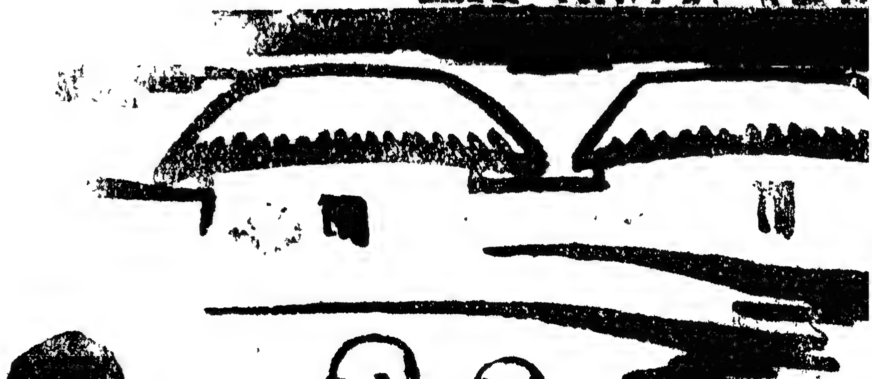
उन नेताओं के चरणों में
झुक किया सभी ने ही प्रणाम,
बुंदेलखंड की जय गूंजी
थी हर्ष हिलोरें वे प्रकाम।

नेता बोले 'भाई मेरे
इसमें न तुम्हारा रंच दोष,
नासमझी ही का कारण है
तुम भी भरते हो राज्यकोश।

मांगो तुम क्षमा किसानों से
इनकी सेवा एहसानों से,
जिन पर था तुमने किया जुल्म
इन मूक बने भगवानों से।'









घाटिया और सब जमादार
पहुँचे उनके भी पास वहाँ,
पर, वे किसान झुक गए प्रथम
यह क्या करते हैं आप यहाँ ?

हम दीन हीन निर्धन मजूर
तुम मालिक हो सरकार अभी ?
है खिया गया तन नहीं पीटने से
नित खाते मार सभी !

क्या हुआ आज तुम झुकते हो ?
दे रहे हमें सम्मान दान,
पर कल से यही प्रहार बदे
हैं, इसीलिए, निर्मित किसान !

भगवान ! कहाँ तुम सोते हो ?
कितने युग का पातक महान।
जुड़ता है तब निर्मित करते
सब कहते हैं जिसको किसान।

अब भी न तुम्हारी आँखों में
यदि बही सजल करुणा धारा,
पिसता ही यों रह जायेगा
तो दलित कृषक जनगण सारा !

यमुना गंगा के गले डाल
गलबाहीं बोली चलो बहें।
जग रहा हमारा राष्ट्र आज
चल सागर से संदेश कहें।





हमको ऐसे युवक चाहिए

ब्रह्मचर्य से मुखमंडल पर
चमक रहा हो तेज अपरिमित,
जिनका हो सुगठित शरीर
दृढ़ भुजदंडों में बल हो शोभित।

जिनका हो उन्नत ललाट
हो निर्मल दृष्टि, ज्ञान से विकसित,
उर में हो उत्साह उच्छ्वसित।
साहस शक्ति शौर्य हो संचित।

देशप्रेम से उमड़ रहा हो
जिनकी वाणी में जय जय स्वर,
हमको ऐसे युवक चाहिए
सकें देश का जो संकट हर!

रस विलास के रहे न लोलुप
जिनमें हो विराग वैभव का,
अतुल त्याग हो छिपा देशहित
जिन्हें गर्व हो निज गौरव का।





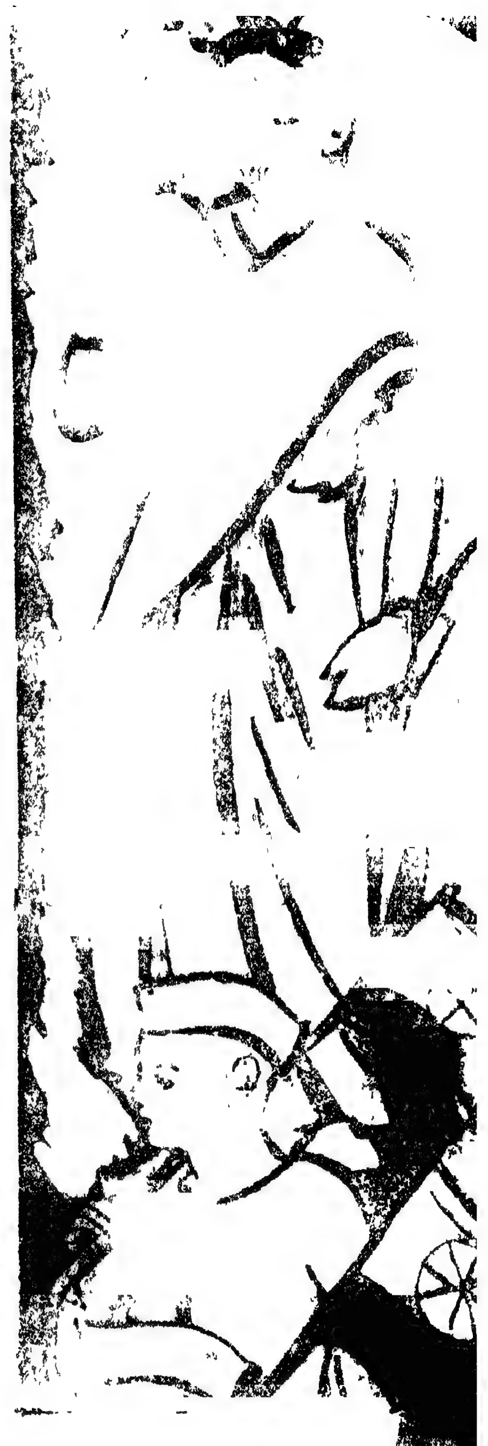
सेवाव्रत में जो दीक्षित हों
दीन दुखी के दुख से कातर,
पर संताप दूर करने को
ललक रहा हो जिनका अंतर।

बने देश के हित वैरागी
जो अपना घरबार छोड़कर,
हमको ऐसे युवक चाहिए
सकें देश का जो संकट हर।

सदा सत्य पथ के अनुयायी
जिन्हें अनृत से मन में भय हो,
दुर्बल के बल बनने के हित
जिनमें शाश्वत भाव उदय हो।

जिन्हें देश के बंधन लखकर
कुछ न सुहाता हो सुख-साधन,
स्वतंत्रता की रटन अधर में
आजादी जिनका आराधन।

सिर को सुमन समझकर जो
अर्पित कर सकते हों चरणों पर,
हमको ऐसे युवक चाहिए
सकें देश का जो संकट हर।



प्राण और प्रण

मेरे जीते में देखूं
तेरे पैरों में कड़ियां ?
क्यों न टूट पड़ती हैं मुझ पर
तो नभ की फुलझड़ियां ?

यह असह्य अपमान
जलाता है अन्तर में ज्वाला।
मां! कैसे मैं ही पी लूं
प्रतिशोध गरल का प्याला ?

प्राण और प्रण की बाज़ी का
लगा हुआ है फेरा।
उतरेंगी तेरी कड़ियां
या उतरेगा सिर मेरा!





उगता राष्ट्र

आज राष्ट्र निर्माण हो रहा
अपना शत-शत संघर्षों में।
कहीं विजय है कहीं पराजय
राष्ट्र उगा करता वर्षों में।

वीरव्रती हैं डटे समर में
भीरु खड़े हैं बनकर दर्शक,
अपने तन का मोह जिन्हें हो
उनको रण क्या हो आकर्षक?

हम तो रण - कंकण पहने हैं
मरण हमें त्योहार - पर्व है,
पुरुष पराक्रम दिखलाते हैं
बल-विक्रम का जिन्हें गर्व है।

मिलता है उत्कर्ष सभी को
पार उतर कर अपकर्षों में।
आज राष्ट्र निर्माण हो रहा
अपना शत-शत संघर्षों में।

वृद्धों से लड़ रहा तरुण दल
उनमें भी सेवा-उमंग है,
स्वतंत्रता के नव गीतों में
साम्यवाद का चढ़ा रंग है।

भू-पतियों से कृषक लड़ रहे
धनिकों से हैं श्रमिक युद्ध-रत,
जीवन नहीं, जीविका चहिए
गरज रहा है आज लोकमत!

धधकी महा उदर की ज्वाला
रणचंडी के प्रण-हर्षों में।
आज राष्ट्र निर्माण हो रहा
अपना शत-शत संघर्षों में।

साम्राज्यों की नींव कँप रहीं
कँपतीं राज्यों की प्राचीरें,
जन-सत्ता जग पड़ी आज है
अब असह्य जनता की पीरें।

आज दुर्ग की ईंटें ढहतीं
बंकिम भ्रकुटि तनी राजों में,
जहाँ क्रूर तांडव प्रभुता का
लज्जा लुटती है ताजों में।

सिंहद्वार खुल गए सबा को
किसी तपस्वी के स्पर्शों में।
आज राष्ट्र निर्माण हो रहा
अपना शत-शत संघर्षों में।





हम तो हैं उनके मतवाले
बलि-पथ पर जो रक्त चढ़ाते,
बिजय मिले, या हिले पराजय
अपने शीश दान कर जाते।

हम तो हैं उनके मतवाले
कौन नहीं होगा मतवाला?
जिसने यह भारत उँगली पर
उठा लिया, युग-भार सँभाला।

उन विशाल बाँहों के बल पर
जय अपनी रण दुर्धर्षों में।
आज राष्ट्र निर्माण हो रहा।
अपना शत-शत संघर्षों में।

धर्मों के पाखंडवाद का
भ्रम मिटता है धीरे-धीरे,
राष्ट्र-धर्म जग रहा मोक्ष-प्रद
गंगा यमुना तीरे-तीरे।

आज मातृ-मंदिर उठता है
बलिदानों की अचल शिला पर,
तरल तिरंगा लहर रहा है
विजय-केतु बन सबके ऊपर।

कोटि-कोटि चरणों की ध्वनि में
कोटि-कोटि स्वर के घर्षों में।
आज राष्ट्र निर्माण हो रहा
अपना शत-शत संघर्षों में।

जागरण

आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया,
नवयुग ने नव तन नव मन से
नव चेतन है लहराया।

आज पददलित पुनः उठ रहे
सह न सका अपमान अधिक चित,
पद-रज भी ठोकर खा करके
सिर पर चढ़ आती उत्तेजित।

बंदीगृह के टूट चुके हैं
लौह-कपाट पद-प्रहार से,
हथकड़ियों की लड़ियां टूटीं
वीरों के बलिदान-भार से।

विद्रोही हैं राष्ट्र-विधाता
सिमटी मायावी की माया,
आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया।









आज गुलामों के भी दिल में
उमड़े आज़ादी के शोले,
जुगनू से लगते आँखों में
विस्फोटक ये बम के गोले।

महानाश का राग छेड़ते
बढ़ते आगे विप्लववाले,
कालकूट के तिक्त घूँट को
पीते हैं मधु-सा मतवाले।

सिंधु बिंदु में आ सिमटा है
वह उत्साह रक्त में छाया,
आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया।

अपने घर पर आग लगाकर
फाग खेलते हैं मतवाले,
शोणित के रँग से रँगते हैं
मतवालों के कवच निराले।

नहीं हाथ में धनुष-बाण है
नहीं चक्र शूली कृपाण है,
लड़ते हैं फिर भी मतवाले
शीश सत्य का शिरस्त्राण है।

बलिदानों के मुंडमाल से
हरि का सिंहासन थर्राया,
आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया।



मिटी निराशा की अँधियाली
आशा की अरुणिमा उषा है,
नव शोणित की लहर उठी है
विगत हुई कालिमा निशा है।

भुज दंडों के लौह दंड में
वज्र-शक्ति जग रही आज है,
जिसके वक्षस्थल में बल है
उसके सिर पर सदा ताज है।

आज आत्मबल ऊपर उठता
पशु-बल पद-तल पर झुक आया,
आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया।

बढ़ चलते जड़ चरण चपल हो
रण-प्रांगण में हृदय हुलसता,
वैभव के विलास के गृह में
त्यागी का तप तेज झुलसता।

आज मरण में जीवन जगता,
यों तो जीवन बना भार है,
आजादी की नींव बनें हम
यह सबके मन की पुकार है।

आत्मत्याग की अमर-भावना ने
मृतकों को अमृत पिलाया,
आज जागरण है स्वदेश में
पलट रही है अपनी काया।





अनुरोध

[कांग्रेस से संन्यास ग्रहण करने पर महात्मा जी के प्रति यह अनुरोध लिखा गया था।]

साबरमती आश्रमवाले!
ओ डांडी-यात्रा वाले!
यह वर्धा में कौन मौन व्रत
ले बैठे ओ मतवाले?

इधर आओ, बतलाओ राह,
हो रहे कोटि कोटि गुमराह।

हमें त्याग कर तुम बैठे
तब कहो कहाँ हम जायें?
भूल रहे हैं, भटक रहे हैं,
कब तक अब भरमायें?

करो पूरी इतनी सी साध,
आज तुम क्षमा करो अपराध!



तुम मत चूको, चूक जायें हम
हम तो हैं नादान,
तुम मत भूलो, भूल जायें हम
हम तो हैं अनजान।

'नहीं', तुम भी कहो मत नहीं,
कहोगे जहाँ, मिटेगी वहीं!

सही नहीं जाती है हमसे
और अधिक नाराजी,
बापू! बोलो कहाँ लगा दें
इन प्राणों की बाजी!

हमारी मिट जायेगी पीर,
चलो हाँ चलो गोमती तीर!

आज अकेला ही है अपना
सेनापति मतिमान!
धीरज दो संतप्त हृदय को
आओ तपोनिधान!

न भूलो अपना प्रण केशव!
ले चलो जहाँ विजय - उत्सव!

एक बार फिर, बजे समरदुंदुभि
उमड़े उत्साह,
एक बार फिर, मुर्दों में
जागे लड़ने की चाह!

करें हम अपने को बलिदान;
कहे जग—'जय जय हिन्दुस्तान!'





विश्राम

किस तरह स्वागत करूँ ? आ लाड़ले !
चाहता जी चरण तेरे चूम लूँ,
गोद ले तुझको तनिक हो लूँ सुखी,
प्यार के हिन्दोल पर चढ़ झूम लूँ।

तू अभी तो है बड़ा सुकुमार ही
हाय ! नंगे पाँव शूलों में गया,
धन्य तेरा प्रेम ! तू ने क्या कहा ?
'माँ ! अरी मैं दौड़ फूलों में गया।'

लाल ! यदि तुझसे मिलें जिस देश को
क्यों सहेगा वह किसी भी क्लेश को ?
भक्त बनकर वारता है प्राण जो
मानकर भगवान ही निज देश को ?

ऐ हठीले ! आ ठहर तू अब न जा
कुछ दिनों तो गेह में विश्राम कर,
क्या कहा—विश्राम है तब तक कहाँ ?
है छिड़ा स्वातंत्र्य का जब तक समर !



महाभिनिष्क्रमण

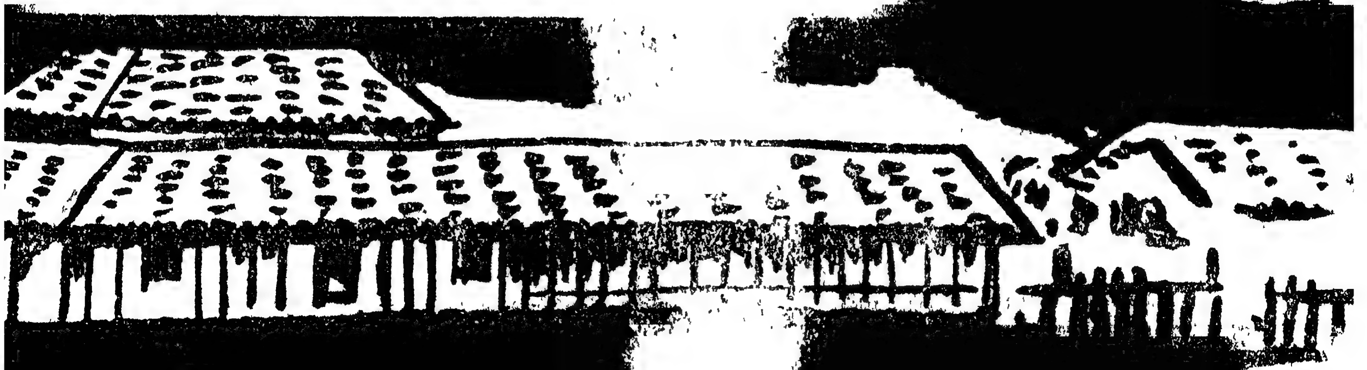
[राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस के सहसा गृह त्यागकर चले जाने पर लिखित]

शीत की निर्मम निशा में
आज यह गृह-त्याग कैसा ?
देश के अनुराग ही में
आज मौन विराग कैसा ?

नग्न तन, पद नग्न, ले
परिधेय मात्र, सघन अँधेरे,
आज असमय में अकेले
चल पड़े किस ओर मेरे !

कौन है वह पथ तुम्हारा
कौन-सा अब लक्ष्य माना ?
कौन सी वह है दिशा
कुछ नहीं संकेत जाना।

हम कहाँ आयें किधर
उस देश का है भाग कैसा ?
शीत की निर्मम निशा में
आज यह गृह-त्याग कैसा ?



खो नहीं जाना कहीं
दीवानगी में ऐ रँगीले,
रँग न लेना वस्त्र अपने
कहीं गैरिक रंग ही ले।

बिना रँग के ही रँगे तुम
चिर विरागी, ओ हठीले,
और फिर संन्यास कैसा
चाहिए ? जिसको यती ले!

आज; फ़िर किस विजन वन में
सज रहा यह याग कैसा?
शीत की निर्मम विशा में
आज यह गृह-त्याग कैसा?

थी व्यथा वह कौन-सी?
चुपचाप की तुमने तयारी,
श्रान्त हैं उद्भ्रांत हम
मिलती नहीं आहट तुम्हारी।

भूल सकते हैं कभी भी
क्या तुम्हें मेरे पुजारी?
विकल देश पुकारता है
तुम कहाँ? मेरे भिखारी!

क्यों नहीं तुम बोलते
यह मौन से अनुराग कैसा?
शीत की निर्मम निशा में
आज यह गृह-त्याग कैसा?



लौट आओ ओ हठीले!
जन्मभूमि तुम्हें बुलाती,
लौट आओ लाड़ले, रूठे
तुम्हें जननी मनाती।

बंधु व्याकुल, देश व्याकुल
जाति व्याकुल है तुम्हारी,
तुम कहीं जाओ नहीं
यों क्षुब्ध हो, ओ क्रान्तिकारी!

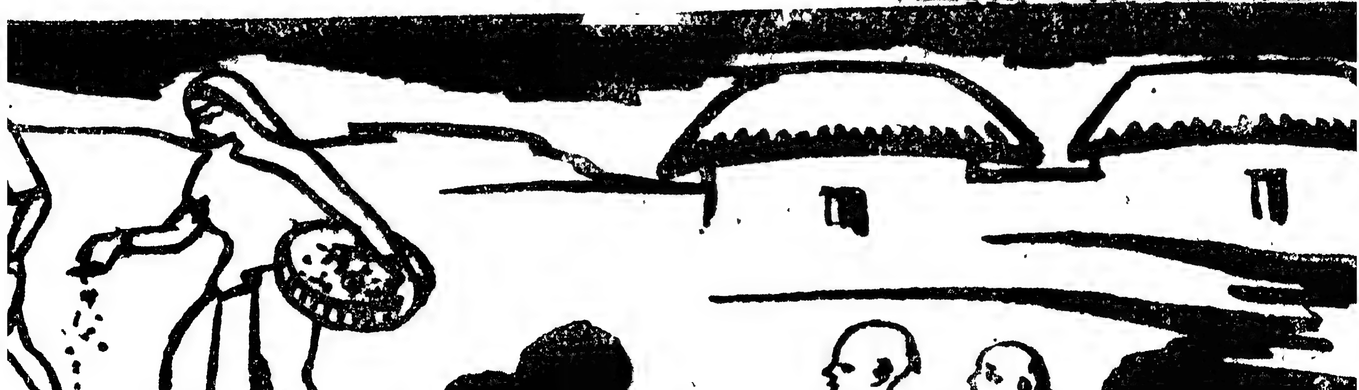
आज घर घर गूंजता है
शोक गीत विहाग कैसा?
शीत की निर्मम निशा में
आज यह गृह-त्याग कैसा?

ढूंढ़ते हैं वे तुम्हें—
साम्राज्य है जिनका यहाँ पर,
हाथ में ले हथकड़ी
तुम हो यती! मेरे जहाँ पर।

प्राण आहुति चले देने
चाहते ये तन तुम्हारा,
आत्मा को बाँधती है
खूब इनकी लौह-कारा।

हँस रहा है नभ उधर
यह व्यंग का है राग कैसा?
शीत की निर्मम निशा में
आज यह गृह-त्याग कैसा?







क्रान्तिकुमारी

मैं आती हूँ बन नई सृष्टि
ध्वंसों के प्रलय-प्रहारों में,
मैं आती हूँ धर कोटि चरण
युग के अनंत हुंकारों में!

मैं आती हूँ ले नव भाषा,
मैं आती ले नव अभिलाषा,

नव शब्द छंद लय ताल मींड़
नव गमकों की गुंजारों में,
मैं आती हूँ बन नई सृष्टि
ध्वंसों के प्रलय प्रहारों में।

चीरती रूढ़ियों की छाती,
बिजली बन तमसा को ढाती,

मैं आती हूँ कंधे पर चढ़
मृत्युंजय अभय-कुमारों में।
मैं आती हूँ बन नई सृष्टि
ध्वंसों के प्रलय प्रहारों में।



जड़ गतानुगतिका हिला हिला,
अंधानुकरण पर बनी शिला,

आती हूँ कसक कराह लिए
मैं भरती हूँ बेजारों में,
मैं आती हूँ बन नई सृष्टि
ध्वंसों के प्रलय प्रहारों में।

पद दलितों को मैं उकसाती,
पतितों का पथ मैं बन जाती,

उल्का, तारा, शनि, केतु लिए
खेला करती अंगारों में।
मै आती हूँ बन नई सृष्टि
ध्वंसों के प्रलय प्रहारों में।

तोड़ती नियम औ' धारायें,
फोड़ती क़िले औ' कारायें,

जंजीरें बेड़ी मृत्यु - दंड,
फाँसी के हाहाकारों में!
मै आती हूँ बन नई सृष्टि
ध्वंसों के प्रलय प्रहारों में!

कवि को देती वरदान नये,
रवि को देती मैदान नये,
छवि को देती उद्यान नये,
हवि को देती बलिदान नये,







मैं ध्वंस-सृजन के चरणों से
नित अपना पंथ बनाती हूँ।
जब आती हूँ।

निर्बल के कर की ढाल बनी
निर्धन के कर करवाल बनी,
धन-दर्पित उद्धत क्रूर कुटिल
कामी—प्राणों का काल बनी,

युग युग के गौरव छत्रमुकुट में
बढ़ बढ़ आग लगाती हूँ।
जब आती हूँ !

मैं विगत अतीत पुनीत पाप की
परिभाषायें बिखराती,
नव संस्कार, नव नव विचार,
नव भाव, कल्पना उपजाती,

निर्भय कवि की वाणी बनकर,
वीणा के तार बजाती हूँ।
जब आती हूँ।

विद्रोह, भ्रान्ति, विप्लव, अशान्ति,
उत्पात, अराजकता भरती,
मैं सप्तसिंधु खौला करके
भू अंबर सभी एक करती,

फूँकती जागरण-शंख, पंख में
बँधे हुए खुलवाती हूँ!
जब आती हूँ।



चित्रकार : श्री एन० मलिक

खंड खंड भूखंड, अंड
ब्रह्मांड पिंड नभ में डोलें
मेरे मृत्युञ्जय की टोली
जब माँ की जय जय बोलें !

पृष्ठ—१८१



विप्लव-गीत

रवि गिरने दे, शशि गिरने दे
गिरने दे, तारक सारे,
अचल हिमाचल चल होने दे
जलधि खौलकर फुंकारे;

धरा धसकने दे पग-पग में
शैल खिसकने दे जल में
दाहक-प्रभुता का मोहक
आवरण मसकने दे पल में।

खंड खंड भूखंड, अंड ब्रह्मांड
पिंड नभ में डोलें,
मेरे मृत्युंजय की टोली
जब माँ की जय-जय बोले!

धूम्रकेतु चमके, चमके शनि,
चमके राहु, त्रास पल-पल,
होवें ग्रह बारहों केंद्रित
विकल करें रव दिग्मंडल;



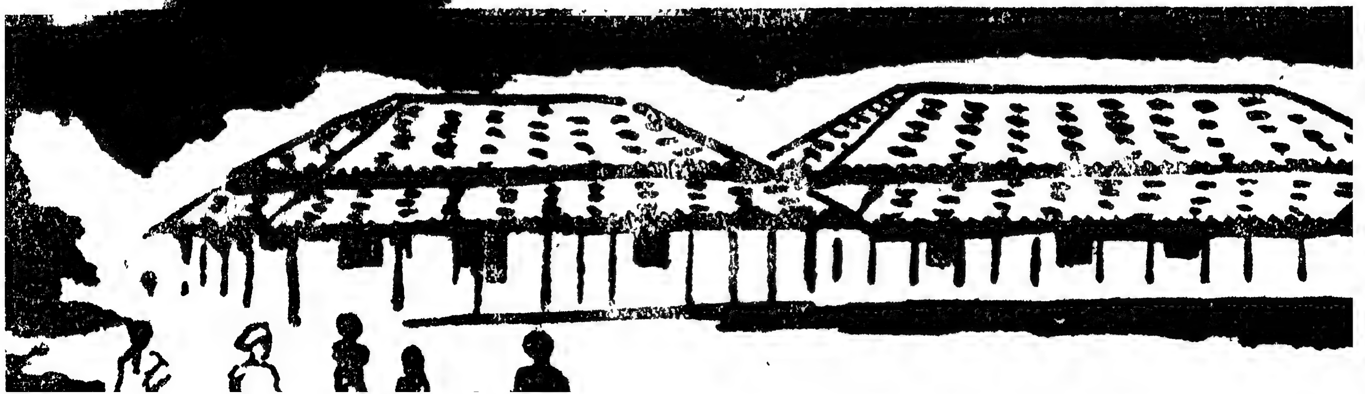
मातायें छोड़ें पुत्रों को
पति को छोड़ें बालायें,
अपनी अपनी पड़े सभी को
प्राणों के लाले छायें;

धुआंधार हो, अंधकार हो
कहीं न कुछ सूझे देखे,
स्वयं विधाता भस्मसात् हो
भूल जाय लिखना लेखे।

सप्तसिंधु बारहों दिवाकर
चौदह भुवन लोक थहरे,
बहें पवन उन्चास
नाश का ऐसा अंतिम क्षण लहरे;

वज्रपात हो, बिजली कड़के
थर-थर कांपे सब जल-थल,
अतल, वितल, पाताल, रसातल
भूतल निखिल सृष्टि-मंडल !

महाप्रलय होने दे निष्ठुर !
कर विनाश की तैयारी।
नष्टभ्रष्ट हो पराधीनता
यों ही मानव की सारी !





प्रयाण-गीत

युग युग सोते रहे आज तक
जागो मेरे वीरो तो!
तरकस में बंधे हुए जीर्ण
अब चमको मेरे तीरो तो!

वह भी क्या जीवन है जिसमें
हो यौवन की लहर नहीं?
चढ़ खराद पर, तिलतिल कटकर
चमको मेरे हीरो तो!

यौवन क्या जिसके मुखपर
लहराता शोणित-रंग नहीं?
यौवन क्या जिसमें आगे
बढ़ने की अमर उमंग नहीं?





ाशव ही सुखमय है उस
ौवन के आने के पहले,
र मर कर जीने की जिसमें
ठती तरल तरंग नहीं!

ढ़ती हुई जवानी में तो
ागे चढ़ जाओ प्यारे!
ढ़ती हुई रवानी में तो
ागे बढ़ जाओ प्यारे!

ीछे ही हटना है फिर
ागे जाने का समय नहीं,
स उभार की यादगार में
छ तो गढ़ जाओ प्यारे!

पराशि की दीप शिखा पर
रने वाले परवाने!
म-प्रेम के मधुर नाम को
टने वाले दीवाने!

ह भी क्या है प्रेम न जिसमें
पी देश की आग रहे?
न्मभूमि के लिए आज मर
मर! तुझे दुनिया जाने!





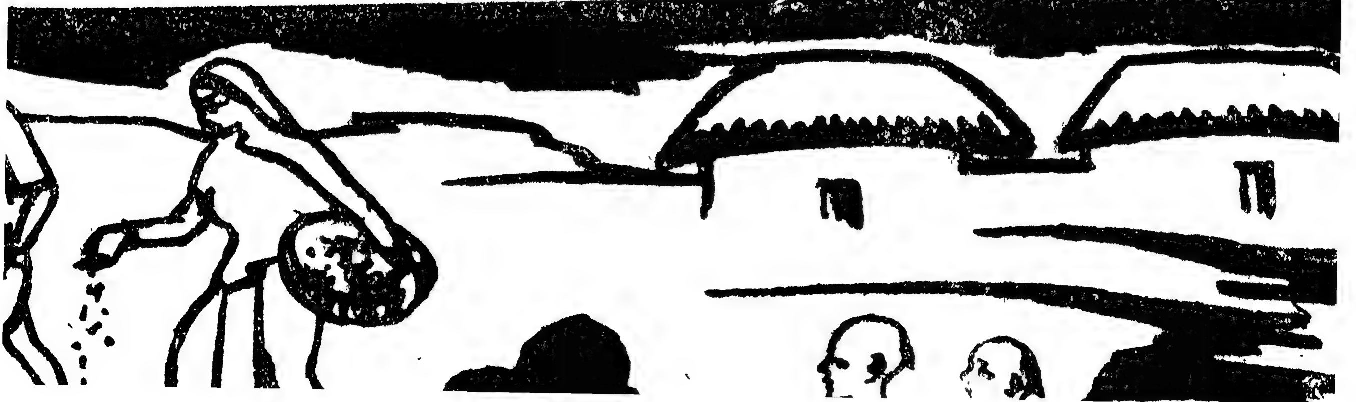
ओ नौजवान !

ओ नौजवान !

तेरी भ्रू-भंगों से सीखा करता
है प्रलय नृत्य करना,
तेरी वाणी से सीखा करता
काल ताल अपनी भरना।

तेरी उमंग से सिंधु तरंगें
सीखा करती हैं उठना,
तेरे मानस से सीखा करता
गगनांगन विशाल बनना।

मेरे असीम ! सीमा मत बन
तेरी ही पृथ्वी आसमान !
ओ नौजवान !





तेरे उभार के साथ उभरती है
दुनिया में सुंदरता,
तेरे निखार के साथ निखरती है
दुनिया में मानवता।

बनता है जर्जर विश्व तरुण
छाती है दिशि दिशि में लाली,
पतझर में खिलता नवजीवन
हँस उठती तरु में हरियाली!

बुलबुल गुल को चटकाती है
कोकिल भरती है नई तान।
ओ नौजवान!

तेरी मस्ती के आलम में
दुनिया को मिल जाती मस्ती,
तेरी हस्ती की बरकत में
सब पाते हैं अपनी हस्ती।

क्या लेगा कोई दान और
तू जान किए रहता सस्ती,
तेरे बसने के साथ साथ
है एक नई बसती बस्ती।

तू खुद ही एक ज़माना है
गा रही जवानी जहाँ गान!
ओ नौजवान!
यह क़ौम तुझे ही देख देख
होती मन में मतवाली है,



फिर से बुझे हुए दीपक में
उठने लगती लाली है।

जो मुरझ चुके पानी न मिला
आती उनमें हरियाली है,
तू आता क्या तेरे प्रकाश से
फट जाती अँधियाली है?

तू प्राची का पावन प्रभात
तू कंचन किरणों का वितान!
ओ नौजवान!

तू नई पौध अरमानों का
तू नया राग मस्तानों का,
तू नया रंग, तू नया ढंग
दीवानों का, मर्दानों का।

तू नया जोश, तू नया होश
अपनों का औ' बेगानों का,
तू नया जमाना, नई शान
ईमान नया, ईमानों का!

है उथल पुथल होती रहती
लख तेरे पाँवों के निशान।
ओ नौजवान!







अभियान-गीत

हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आजादी के मतवाले हैं;
बलिवेदी पर हँस-हँस करके,
निज शीश चढ़ानेवाले हैं।

केसरिया बाना पहन लिया,
तब फिर प्राणों का मोह कहाँ?
जब बने देश के संन्यासी,
नारी-बच्चों का छोह कहाँ?

जननी के वीर पुजारी हैं,
सर्वस्व लुटानेवाले हैं;
हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आजादी के मतवाले हैं।

अब देश-प्रेम की रङ्गत में,
रँग गया हमारा यह जीवन।
उसके ही लिए समर्पित है,
सब कुछ अपना यह तन-मन-धन।

आगे को बढ़ा चरण रण में,
पीछे न हटानेवाले हैं;
हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आजादी के मतवाले हैं।

सन्तान शूर-वीरों की हैं,
हम दास नहीं कहलायेंगे;
या तो स्वतन्त्र हो जायेंगे,
या रण में मर मिट जायेंगे;

हम अमर शहीदों की टोली में,
नाम लिखानेवाले हैं;
हम मातृ-भूमि के सैनिक हैं,
आजादी के मतवाले हैं।





ऐतिहासिक उपवास

हे प्रबुद्ध !
आज तुम करने चले पुनः युद्ध ?
अग्नि में प्रवेश कर बनने चले आत्म-शुद्ध
मुक्त चले करने निज द्वार रुद्ध
हे अक्रुद्ध !

क्षुब्ध हुए हमसे क्या राष्ट्रदेव !
महादेव !
आज फिर गरल उठा अधरों से लगा लिया
करुणामय !
किस पर यह महारोष ?
हम विमूढ़
समझ नहीं पाते कर्त्तव्य गूढ़ ?





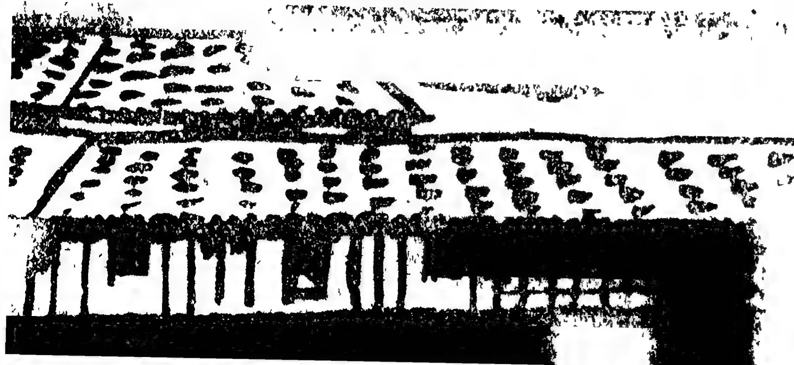
यों ही विश्वप्रांगण में आज महा-अग्निकांड,
पश्चिम से प्राची तक
ज्वालायें हैं प्रकांड!
लगता है नष्टमान विश्व-भांड!

तपोनिधे! तब है यह व्रत-विधान!
तुम हो आत्म-बल निधान!
किन्तु, हम तो अशक्त,
धैर्य हो रहा है त्यक्त!
तुम हो उपवासरत निराहार
निखिल राष्ट्र निराहार!
इस पद-निक्षेप में
रुद्ध आज राष्ट्र-श्वास!
आज किधर एकाकी तुम
कर रहे अचिर प्रवास?

यों ही राष्ट्र क्षत-विक्षत
रक्त भरा है जन-पथ,
बढ़ता नहीं गति-रथ,

भस्मीभूत बने-भवन,
निर्जन हैं बने सदन,
अग्नि-दहन!
आज गहन!

देख देख हाहाकार;
सूत्रधार!
तुम भी क्या कूद पड़े?
हममें आ हुए खड़े,
चलने को साथ साथ;
जलने को साथ साथ!



तुम न चलो साथ साथ,
तुम न जलो साथ साथ,
हम पर हो वरद हाथ
हम न रहेंगे अनाथ !

जनता के हृदय प्राण !
तुमसे ही राष्ट्र की धमनियों में
जीवन है प्रवहमान !
चेतन है प्रवहमान !
यौवन है प्रवहमान !

हे दधीचि !
अस्थियों को आज नाश
करो मत करुणानिधान !
ये ही वज्र के समान
ध्वस्त करेंगी महर्षि !
पाप ताप,
असुरों की शक्ति सभी
युग युग का अभिशाप।



व्रत-समाप्ति

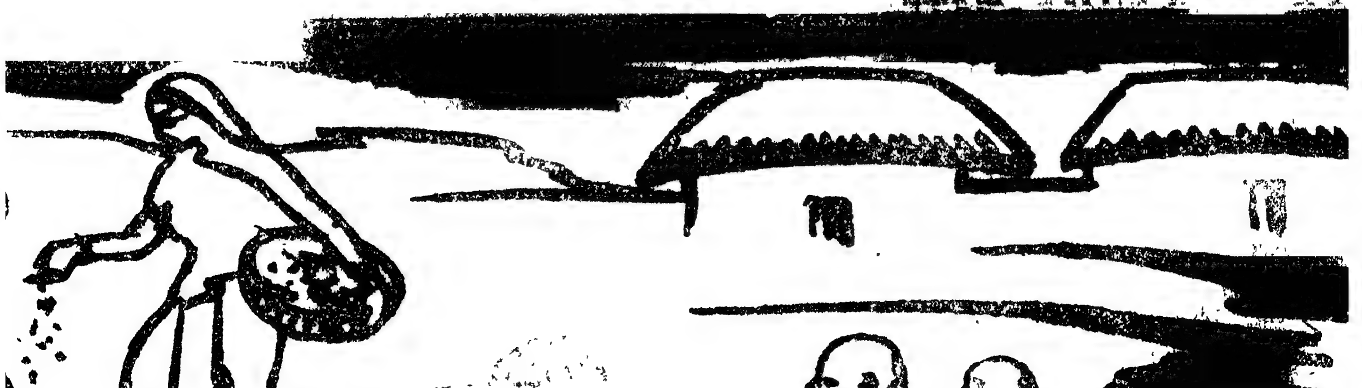
आज दिवस है व्रत समाप्ति का, महाशान्ति का पर्व,
आज सुखद संवाद देश को, आज हमें है गर्व ;

आज मेघ हट गए, खिल उठी,
नभ में निर्मल राका,
बापू चला, तुम्हारे युग का
फिर मंगलमय साका !

आज हुए संताप दुरित, अभिशाप पाप सब खर्व,
आज दिवस है व्रत समाप्ति का, महाशान्ति का पर्व !

आज राष्ट्र की शिथिल धमनियों में
जीवन की धारा,
नव जीवन, नव चेतन मन में,
आज दुरित दुख सारा ;

बापू ! बने रहे तुम, बन जायेंगी विधियाँ सर्व !
आज दिवस है व्रत समाप्ति का, महाशान्ति का पर्व !





बुभुक्षित बंगाल

यह अपने घर के आँगन में
कैसा हाहाकार मचा ?
दो मुट्ठी है अन्न न मिलता
निष्ठुर नर-संहार मचा,

त्राता ने है हाथ समेटा,
बैठा दूर विधाता है।
भूखे तड़प रहे हैं भाई,
बहनें, भूखी माता हैं!

वह देखो पथ—–पर कितने ही
हाथ उठ रहे हैं ऊपर,
रोटी एक सामने है
सैकड़ों खड़े हैं नारी-नर;

'रोटी-रोटी' की पुकार है
राहों में चौराहों में।
'भात-भात' की है गुहार
आहों में और कराहों में।



कितने ही शव निकल चुके
मरकर भूखों की मारों में,
देख रहे अधमरे तुम्हें,
डूबे हैं रुद्ध-पुकारों में,

सोचो होते, काश, तुम्हारे
ये अनाथ बेटा-बेटी,
सह सकते क्या इनकी आहें
सह सकते इनकी हेटी?

कितने प्यार दुलारों से
मां बापों ने पाला होगा?
आँसू इनके देख हृदय में
फूटा-सा छाला होगा।

यह अपना बंगाल क्षुधित है
जिसने पोषण भरण किया,
यह अपना बंगाल व्यथित है
जिसने नित धन-धान्य दिया।

लो समेट आकुल बांहों में
क्षुधित बंधु को करुणाकर!
ओ पांचाल, बिहार, सिंधु,
गुजरात, बढ़ाओ अगणित कर;

ओ अशेष भारत! उद्यत हो,
तन मन धन बलिदान करो।
ओ कठोर! तुम द्रवो आज
अपनी करुणा का दान करो।







आज रुद्ध है मेरी वाणी !

वह मानव कंकाल खड़ा है
फटे चीथड़े देह लपेटे,
दुर्गंधित जर्जर टुकड़े से
मानवपन की लाज समेटे;

तन क्या है? कंकाल-मात्र !
यह शव, जो जा मरघट पर लेटे,
किन्तु, खड़ा विप्लव धधकाने
अचल मृत्यु को भुज भर भेंटे;

निखिल सृष्टि को भस्म करेगी
इन त्रसितों की मौन कहानी,
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी !



वह किसान, सामने खड़ा है
जो युग-युग से पिसता आया,
भाग्य शिला पर विजित प्रताड़ित
अपना मस्तक घिसता आया;

अपनी आँतों पर अकाल ले
स्वयं बुभुक्षित, विश्व जिलाया,
अंतिम श्वासें आज गिन रहा
किसने डस ली कंचन-काया?

सर्वनाश लाया अपने घर
महामूढ़ मानव अभिमानी!
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ,
आज रुद्ध है मेरी वाणी!

हाहाकार मचा पग-पग में
धधकी महा उदर की ज्वाला,
नंगों भिखमंगों की टोली
जपती वो टुकड़ों की माला;

अरमानों की नींव कँप उठी,
जब से यह जग देखा-भाला,
गुलशन उजड़ा, महफ़िल उजड़ी,
साक़ी मिटा; मिट गई हाला,

देख खड़ा कंगाल सामने
मन की सब साधें मुरझानी!
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी!



कारा के काले रौरव का
तिमिर नहीं अब तक भग पाया,
लोहे की जंजीरों के
घावों में अब तक रक्त न आया;

शुष्क हड्डियों में जीवन की
अभी न मांसल गति बन पाई,
खड़े पुनः तुम भार लादनें
आये लेने कठिन कमाई!

क़ुर्बानी पर क़ुर्बानी से
चढ़ता कुंठित असि पर पानी!
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी!

धधकी महाशक्ति है मेरी
इस गति विधि पर आग लगा दूं,
लाक्षागृह का राज बता दूं,
सोया जनगण शेष जगा दूं;

कूटचक्र, षड्यंत्र, दम्भ के
साम्राज्यों के दुर्ग ढहा दूं;
एकबार, इस पृथ्वीतल को
अभिलाषों से मुक्त बना दूं;

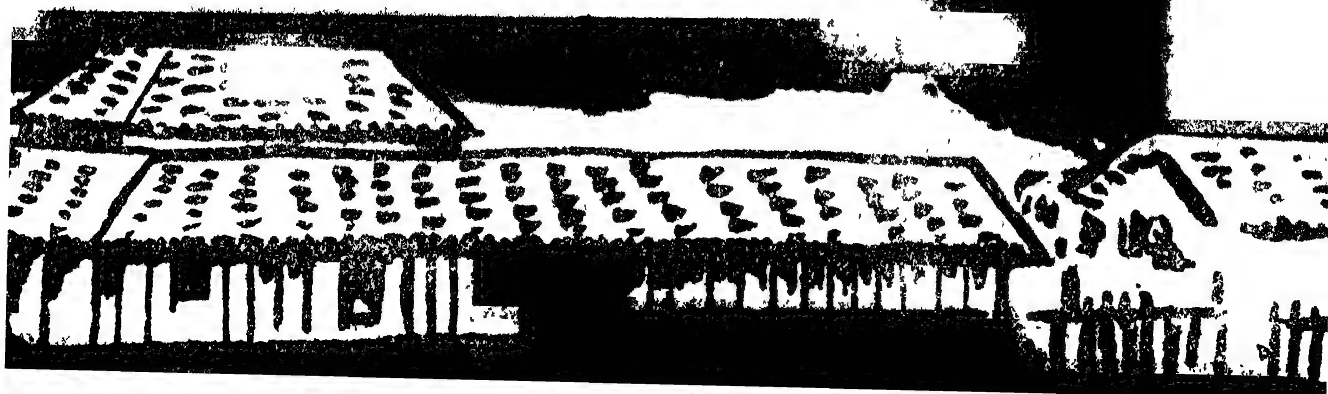
इस समाज, इस जाति, देश की
है करुणा से भरी कहानी!
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ,
आज रुद्ध है मेरी वाणी!

चिनगारियाँ निकल पड़ती हैं
मेरी वीणा के तारों से,
झुलस उँगलियाँ, रहीं ज्वाल में
लौ उठती है झंकारों से,

आज गीत की टेक टेक पर
गिरती उथल-पुथल की ज्वाला,
भवन कुटी मंदिर-मस्जिद सब
बनने चले राख की माला!

विधवा का सिंदूर जल रहा
प्रलय-वह्नि की अरुण निशानी!
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ
आज रुद्ध है मेरी वाणी!







भैरवी

सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

जब सारी दुनिया सोती थी
तब तुमने ही उसे जगाया,
दिव्य ज्ञान के दीप जलाकर
तुमने ही तम दूर भगाया;

तुम्हीं सो रहे, दुनिया जगती
यह कैसा मद है मतवाले !
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

तुमने वेद उपनिषद रचकर
जग-जीवन का मर्म बताया,
ज्ञान शक्ति है, ज्ञान मुक्ति है
तुमने ही तो गान सुनाया;

अक्षर से अनभिज्ञ तुम्हीं हो
पिये किस नशा के ये प्याले ?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !



भूल गए मथुरा वृन्दावन,
भूल गए क्या दिल्ली झाँसी ?
भूल गए उज्जैन अवन्ती,
भूले सभी अयोध्या काशी ?

जननी की जंजीरें बजतीं,
जगा रहे कड़ियों के छाले,
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले !

पृष्ठ—१४१

गंगा यमुना के कूलों पर
सप्त सौध थे खड़े तुम्हारे,
सिंहासन था, स्वर्ण-छत्र था,
कौन ले गया हर वे सारे?

टूटी झोंपड़ियों में अब तो
जीने के पड़ रहे कसाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

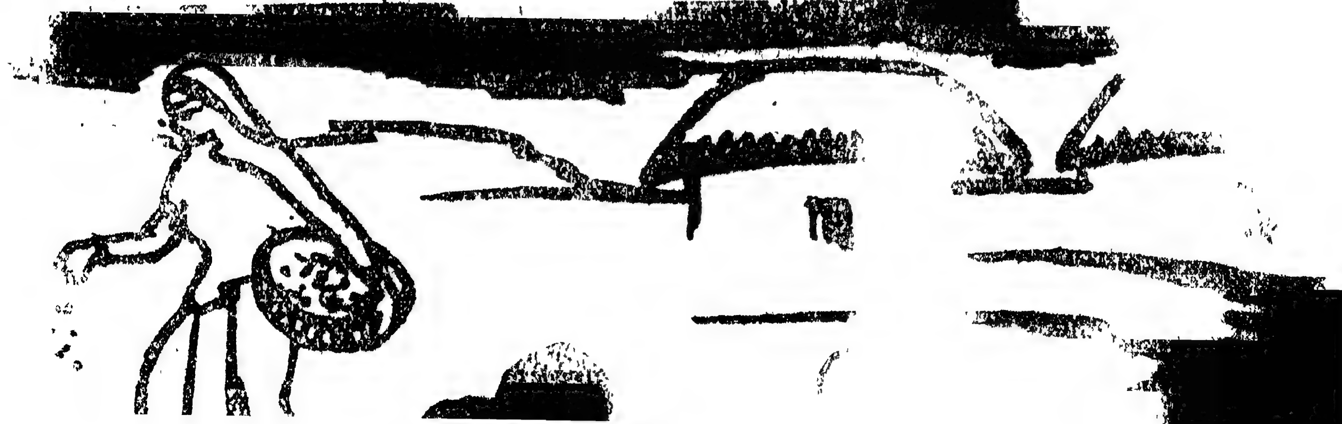
भूल गये क्या राम-राज्य वह
जहाँ सभी को सुख था अपना,
वे धन-धान्य-पूर्ण गृह अपने
आज बना भोजन भी सपना;

कहाँ खो गये वे दिन अपने
किसने तोड़े घर के ताले?
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

भूल गये वृन्दावन मथुरा
भूल गये क्या दिल्ली झाँसी?
भूल गये उज्जैन अवन्ती
भूले सभी अयोध्या काशी?

यह विस्मृति की मदिरा तुमने
कब पी ली मेरे मदवाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!







भूल गये क्या कुरुक्षेत्र वह
जहाँ कृष्ण की गूँजी गीता,
जहाँ न्याय के लिए अचल हो
पांडु-पुत्र ने रण को जीता;

फिर कैसे तुम भीरु बने हो
तुमने रण-प्रण के व्रण पाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

याद करो अपने गौरव को
थे तुम कौन, कौन हो अब तुम।
राजा से बन गये भिखारी,
फिर भी, मन में तुम्हें नहीं ग़म?

पहचानो फिर से अपने को
मेरे भूखों मरनेवाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!

जागो हे पांचालनिवासी!
जागो हे गुर्जर मद्रासी!
जागो हिन्दू मुग़ल मरहठे
जागो मेरे भारतवासी!

जननी की जंजीरें बजतीं
जगा रहे कड़ियों के छाले!
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले!



ग्राम का आमंत्रण

वर्धा में बापू का निवास
सब कहते जिसको महिलाश्रम,
क्या देख रहे ये उन्मन हो
नभ में घन के घिरने का क्रम?

घन विकल घूमते अंबर में
कैसे बरसावें वे जीवन?
बापू हैं आश्रम में आकुल
कैसे लावें वे नवजीवन?





बिजली है रह रह कौंध रही
घनमाला के अंतस्तल में,
संकल्प विकल्प इधर उठते
हैं बापू के हृदयस्थल में—

'ये नगर विभव वैभव बंधन से
चाह रहे हैं कसना मन,
मैं चला तोड़ने ये कड़ियाँ,
आ रहा ग्राम का आमंत्रण।'

आ रही ग्राम की सरल वायु
कहती है आओ मनमोहन!
तुम बहुत रह चुके नगरों में
देखो मेरे भी गृह - आँगन!

आओ तुम पुरई - पालों में
आओ छप्पर खपरैलों में,
आओ फूसों की कुटियों में
कुम्हड़े कद्दू की बेलों में।

आओ कच्ची दीवारों से
निर्मित घर की चौपालों में,
रहते हैं दीन किसान जहाँ
जामुन महुआ के थालों में।

आओ नवजीवन के प्रभात!
आओ नवजीवन की किरणें,
इन ग्रामों का भी भाग्य जगे
ये भी श्रीचरणों को वरणें।





ये ग्राम उगाते अन्न धान
वे नगर प्रेम से चखते हैं,
ये ग्राम उगाते साग पात
वे नगर लूटते रहते हैं।

दधि दूध और घृत की नदियाँ
ये नगर पिये ही जाते हैं।
भूखे रह कर, नंगे रह कर
ये ग्राम जिये ही जाते हैं!

कुछ मूल, सूद दर सूद लगा
गृह छीन लिए ही जाते हैं
चिकनी चुपड़ी बातें कहकर
रे घाव सिये ही जाते हैं।

निशिदिन है हाहाकार मचा
कैसा यह अत्याचार मचा?
निर्धन को धनी खा रहे हैं
यह बर्बर नर-संहार मचा!

वैभव विलास के उच्च नगर
हैं तुम्हें उधर ही खींच रहे,
फैला कर इन्द्रजाल अपना
अन्तर के लोचन मींच रहे!



ओ आत्मसाधना के यात्री!
तेरा पावन आवास यहाँ,
निर्मल नभ, धरणी हरित जहाँ
लाती है वायु सुवास जहाँ।



भोले भाले सच्चे किसान
तुमको न कभी भटकावेंगे,
अपने खेतों खलिहानों का
वे तुमको वृत्त सुनावेंगे।

कैसे कटती है रात, दिवस
कैसे तुमको समझावेंगे,
हे ग्रामदेवता! ग्राम तुम्हें
पाकर कृतार्थ हो जावेंगे।

हैं जीर्ण शीर्ण ये ग्राम
जहाँ युग-युग से छाया अंधकार,
ये रौरव भव में बसे हुए
सुन लो तुम इनकी भी गुहार।

घन चले फूट कर बरस पड़े
भरने अमृत से भव सारा,
बापू भी आश्रम से बाहर
बह चली किधर गंगा-धारा?

घन लगे बरसने रिमिक भिमिक
कुछ हुआ और भी अंधकार,
वह चला प्रभंजन भी सन सन
बिजली चमकी ले द्युति अपार।

बापू कटि-बद्ध चले आश्रम
को त्याग, व्यग्र आश्रमवासी!
इस समय कहाँ इस असमय में
जाते हैं अपने अधिवासी?

आश्रमवासी चिंचित व्याकुल
कहते जाने का यह न समय,
'विश्राम करो बापू! चलना
प्रातः जब होगा अरुणोदय!'

दुर्दिन है, सुदिन नहीं है यह
हम सभी चलेंगे साथ संग,
एकाकी जायें न आप कहीं
तम सघन, गगन का श्याम रंग।

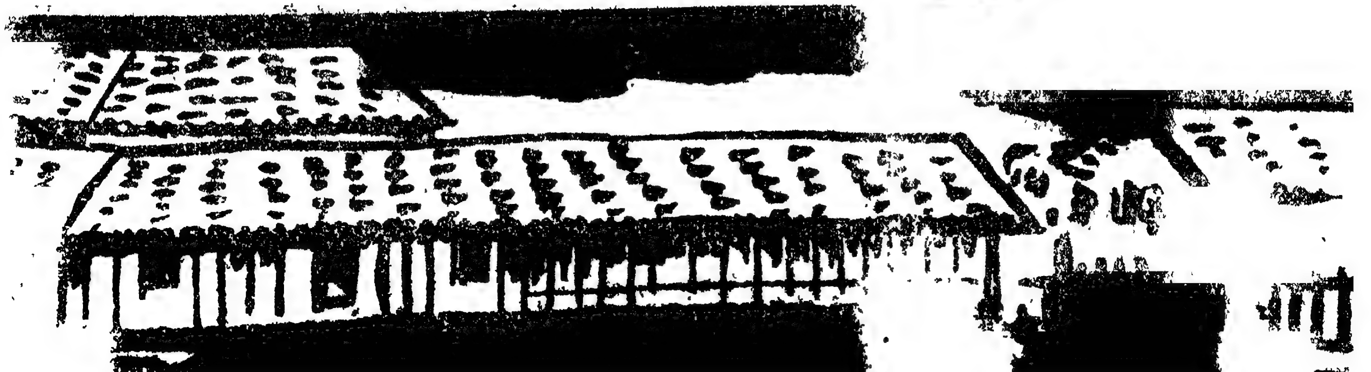
पर सुनते कब किसकी बापू
वे सुनते आत्मा की पुकार,
वे सुनते निज प्रभु की पुकार
चल पड़ते खुलता जिधर द्वार!

रह गई विनय अनुनय करती
पर, कहाँ किसी की वे मानें?
वे चले आज एकाकी ही
उन्नत ललाट, सीना ताने!

कर में लेकर अपनी लकुटी
तन में मोटा उजला कंबल,
दृढ़ दृष्टि सुदृढ़ गति प्रगति पुष्ट,
देने को ग्रामों को संबल!

वे चले स्वयं घन गर्जन से,
विद्युत् के अविचल वर्जन से,
प्रलयंकर भीम प्रभंजन से,
जलनिधि के भीषण तर्जन से!





रह गए देखते खड़े सभी
चित्रित से, जड़ित, चकित, विस्मित !
कितने दुर्जय निर्भय हैं ये
यह भी विभूति प्रभु की विकसित !

बापू आश्रम से दूर दूर
थे बहुत दूर अपनी धुन में,
जा रहे चले गंभीर शान्त
आत्मा के मधुमय गुंजन में।

बह रहा प्रभंजन था रह रह,
बापू बढ़ते झोंके सह सह,
बाधाओं की विपदाओं की
प्राचीरें जाती थीं ढह ढह !

बिजली बन करके कंठहार
बापू के उर में सजती थी,
घन थे प्रसन्न, अमृत जल था,
वंशी स्वागत की बजती थी।

ग्रामों की उत्सुक आंख लगी थी
अपने नव अभ्यागत पर,
किसको सौभाग्य प्रदान करें
सब उत्कंठित थे स्वागत पर !

पथ की लतिकाएँ फूल रहीं
फूलों के घट थीं साज रहीं,
मधु भर करके मंगल घट में
प्रतिहारी बनी विराज रहीं।



मन में प्रसन्न खगमृग अतीव
वरदान उन्होंने पाया था,
आज ही अहिंसा का स्वामी
गृह तज कर बन में आया था।

थे मुदित मयूर मयूरी भी
हिलमिल कर गरवा नाच रहे,
सुरधनु-से पंख खोल अपने
निज भाग्य-पृष्ट थे बाँच रहे।

कर्कश कठोर थी भूमि बनी
करुणा जल पा करके कोमल,
बापू प्रसन्न उन्मुक्त सबल
थे चले जा रहे उत्शृंखल।

झंझा की इधर झकोरें थीं
हिमगिरि पर उधर महान चला,
वर्षा की बूँदें थीं सहस्र
पर उधर भीम तूफ़ान चला।

ग्रामों का नव उत्थान चला,
यह भव का नव निर्माण चला!
पद दलितों का अरमान चला,
आत्माहुति का बलिदान चला।

थे चरण-चिन्ह बनते पथ में
दृढ़ पुष्ट चरण, मिट्टी धँसती,
इतिहास लिख रही थी दुनिया
थी आज नई बस्ती बसती!





कितनी ही आँखें बिछ पथ पर
थी पदरज ले धरती शिर पर,
वनबालायें वन घूम घूम
गाती थीं गायन मादक स्वर!

बापू चल आये दूर जहाँ
निर्जन वन था एकांत प्रांत,
था गाँव एक सेगाँव जहाँ
दो चार धाम थे खड़े शांत!

जैसे ग्रामों के प्रतिनिधि बन
वे हों स्वागत में सावधान!
सौभाग्य समझ अपने गृह का
ले गये उन्हें गृह में किसान!

बीती वह रात वहीं, उन
कुटियों में जब पुण्य प्रभात हुआ,
देखा दुनिया ने वहीं एक
था मधुर ग्राम नवजात हुआ।





सेवाग्राम

वर्धा से दूर सुदूर बसा है
वही मनोहर मधुर ग्राम,
जिसका है सेवाग्राम नाम
है जिसमें लघु लघु बने धाम।

है यही देश का हृदय तीर्थ
है यही देश का हृदय प्राण,
हैं उठते यहीं विचार दिव्य
जो करते जनगण राष्ट्र-त्राण।

नवयुग के नये विधाता की
यह है अजीब छोटी बस्ती,
जिसमें नवीन जीवन का क्रम
जिसमें नवीन दुनिया हँसती।

यह तपोभूमि, यह कर्मभूमि
यह धर्मभूमि है तेजमयी,
जिसमें सुलझाईं जाती हैं
सब जटिल ग्रन्थियाँ नई-नई।





यह है हिमाद्रि उत्तुंग धवल
जिससे बहकर गंगा धारा,
है हरा भरा उर्वर करती
भारत का गृह आँगन सारा।

है यहीं सौर्य मंडल जिसके
चारों ही ओर प्रकाशपुंज,
करते रहते हैं परिक्रमा
साजते दिव्य आरती - कुंज।

लेकर प्रकाश की रश्मि, कर्म की
गतिविधि, रति मति का संबल,
अगणित नक्षत्र उदित होते
सुंदर स्वदेश नभ में निर्मल।

यह शक्ति-केन्द्र, प्रेरणा-केन्द्र,
अर्चना-केन्द्र, साधना-केन्द्र,
वंदन अभिनंदन करते हैं
जिसमें आकर नर औ' नरेन्द्र।

है यहीं मूर्ति वह तपोमयी
जो देती रह-रह नवल स्फूर्ति,
इस देश अभागे की झोली
भरती है संबल नवल पूर्ति।

वह मूर्ति जिसे कहते बापू
गान्धी, मनमोहन, महात्मा,
रहती है यहीं, यहीं सोती
जगती प्रणम्य वह युगात्मा।

भ्रमण

संध्या की स्वर्णिम किरणें जब
ढल छा जाती हैं तरुओं पर,
कुछ कलरव करते सा उड़ते
खगकुल तृण चुन चुन अपने घर।

गोधूलि बनी संध्या - समीर
पथ में उड़ती है कभी कभी,
लौटते कृषक खलिहानों से
कंधे धर हल पुर वस्त्र सभी।

तब चलती हैं टोली पथ में
कुछ इने गिने मस्तानों की,
घूमने साथ में बापू के
आजादी के दीवानों की।

'लो चलो घूमनेवाले सब'
बापू कहते आकर बाहर,
सुनकर वाणी आश्रमवासी
आते कितने ही नारी नर।





कुछ नन्हें नन्हें बच्चे भी
आकर कहते हैं मचल मचल,
'बापू जी साथ चलेंगे हम
आगे बढ़ बढ़कर उछल-उछल।

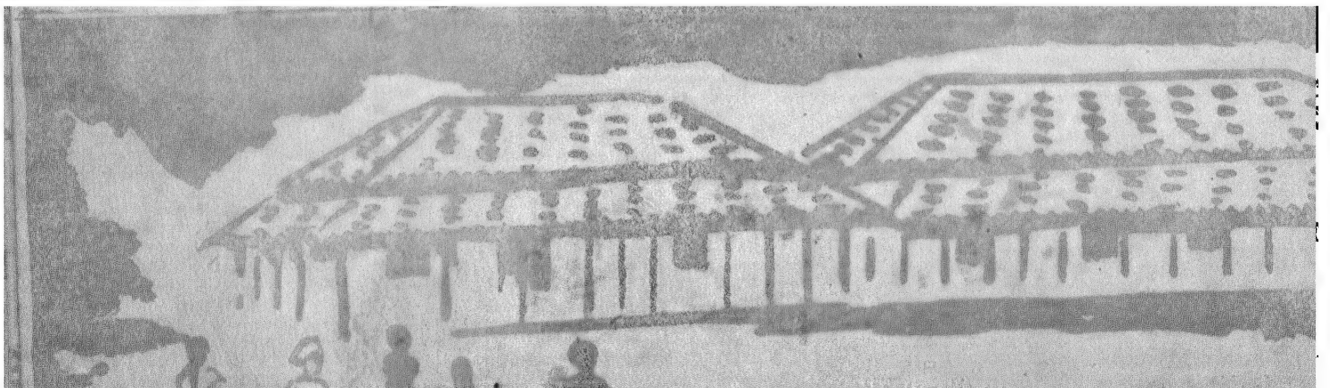
मातायें कहतीं चल न सकेगा
खेल अभी बेटा! घर में,
बापू कुछ क़दम चला देते
शिशु का कर लेकर निज कर में।

आँसू आते हैं नहीं कभी,
है हँसी खेलती अधरों पर,
वह जादू बापू कर देते
बच्चों से बातें कर मनहर।

यों ही औरों को भी तो वे
चलना भव-पथ में सिखलाते,
सब चलते हैं दो-चार क़दम
फिर शिशु से पीछे रह जाते।

शिशु सोचा करता खड़ा खड़ा
वह थोड़ा और बड़ा होता,
तो साथ-साथ चलता बापू के
यों न कभी पिछड़ा होता।

चलते अनेक हैं साथ-साथ
कुछ ही तो ही हैं चल पाते,
कुछ पहले ही, कुछ बीच,
अंत में कुछ, कुछ पीछे रह जाते।



यह भ्रमण खोल सा देता है
उनके जीवन का गहन मर्म,
जो साथ चल सकें बापू के
दो चार नित्य जो निरत-कर्म।

कितनी गति इनकी तीव्र
चले तब चले, नहीं रोके रुकते,
कुछ भी आये सामने शीत
हिम, विघ्न, कहाँ पर ये झुकते?

इनके चरणों मे ही चल चल
इस गिरे राष्ट्र को बढ़ना है,
जिस ओर चले जनगणनायक
घाटी पर्वत पर चढ़ना है!

बापू न! चलो तुम इस गति से
जिससे न सभी जन बढ़ पायें,
अग्रणी! अकेले पहुँचो तुम
सब जनगण यहीं पिछड़ जायें।

जब चलो, चलो इस गति मति से
हम भी चरणों में चल पायें,
इस तिमिरावृत भारत नभ में,
नवजीवन का प्रभात लायें।

है जिनका निश्चित ध्येय
स्पष्ट है मार्ग, और साधन निर्मल,
उनके चरणों के अनुगामी
होंगे यात्रा में क्यों न सफल?









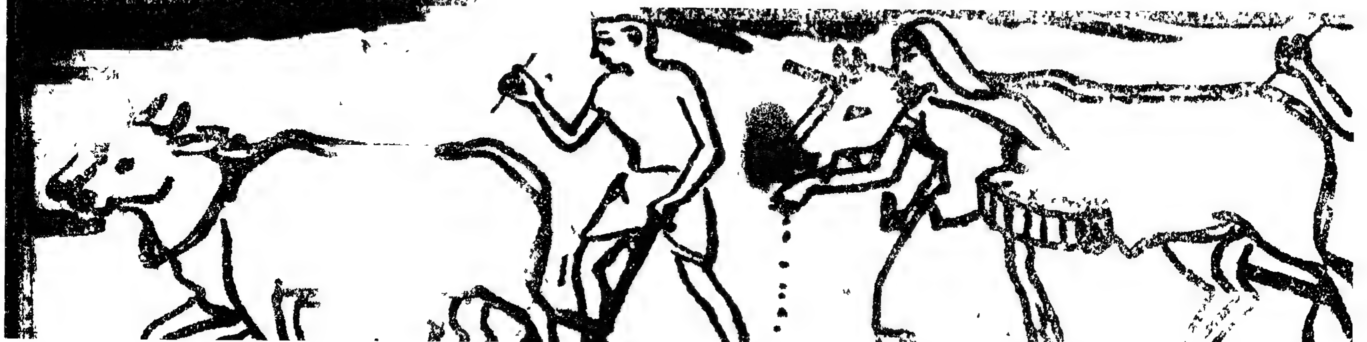
बापू

मन में नूतन बल सँवारता
जीवन के संशय भय हरता,
वृद्ध वीर बापू वह आया
कोटि कोटि चरणों को धरता;

धरणी-मग होता है डगमग
जब चलता यह धीर तपस्वी,
गगन मगन होकर गाता है
गाता जो भी राग मनस्वी;

पग पर पग धर-धर चलते हैं
कोटि कोटि योधा सेनानी,
विनत माथ, उन्नत मस्तक ले
कर निःशस्त्र, आत्म-अभिमानी!

युग-युग का घन तम फटता है
नव प्रकाश प्राणों में भरता;
वृद्ध वीर बापू वह आया
कोटि कोटि चरणों को धरता!



निद्रित भारत जगा आज है,
यह किसका पावन प्रभाव है?
किसके करुणांचल के नीचे
निर्भयता का बढ़ा भाव है?

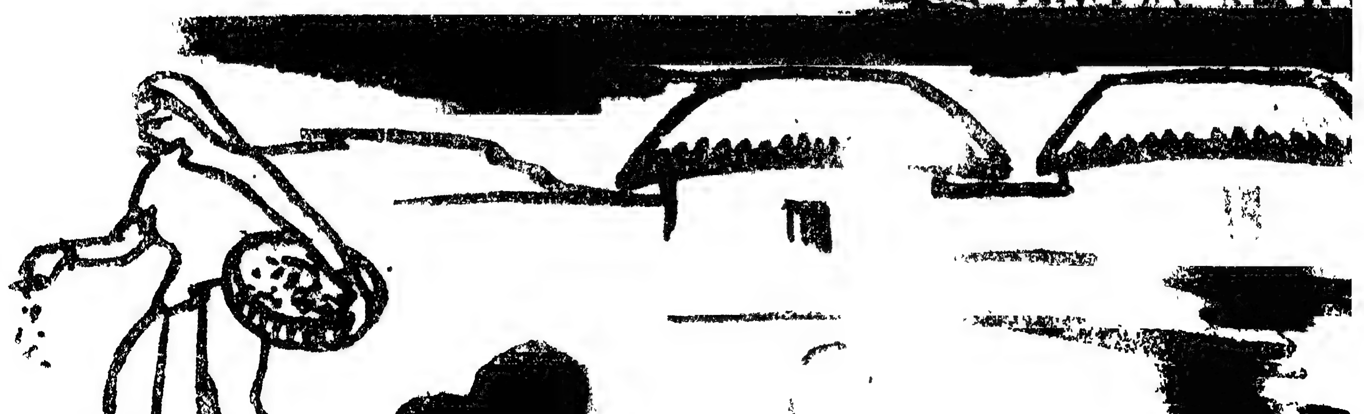
नवचेतन की श्वास ले रहे
हम भी जाग उठे हैं जग में,
उठा लगाया हृदय-कंठ से
किसने पददलितों को मग में?

व्यथित राष्ट्र पर आँचल करता
जीवन के नव-रस-कन ढरता,
वृद्ध वीर बापू वह आया
कोटि कोटि चरणों को धरता!

यह किसके तप का प्रकाश है?
नवजीवन जन जन में छाया,
सत्य जगा, करुणा उठ बैठी
सिमटी मायावी की माया,

'वैभव' से 'विराग' उठ बोला--
'चलो बढ़ो पावन चरणों में,
मानव-जीवन सफल बना लो
चढ़ पूजा के उपकरणों में।

जननी की कड़ियाँ तड़काता
स्वतंत्रता के नव स्वर भरता,
वृद्ध वीर बापू वह आया
कोटि कोटि चरणों को धरता!





कविता रानी से

कल्पनामयी ओ कल्यानी !
ओ मेरे भावों की रानी !
क्यों भिगो रही कोमल कपोल
बहता है आंखों से पानी !

कैसा विषाद ? कैसा रे दुख ?
सब समय नहीं है अंधकार !
आती है काली रजनी तो
दिन का भी है उज्ज्वल प्रसार !

अधरों पर अपने हास धरो,
बाधाओं का उपहास धरो,
जीवन का दिव्य विकास धरो,
तुम यों न निराशा श्वास भरो !

विश्वास अमर, साधना सफल
सत्कर्मों से श्रृंगार करो,
धुंधली तस्वीरें खींच खींच
मत जीवन का संहार करो।



वेदों उपनिषदों की धात्री !
चिर जीवन चिर आनंद यहाँ,
मंगल चिंतन, मंगल सुकर्म
है जीवन में अवसाद कहाँ ?

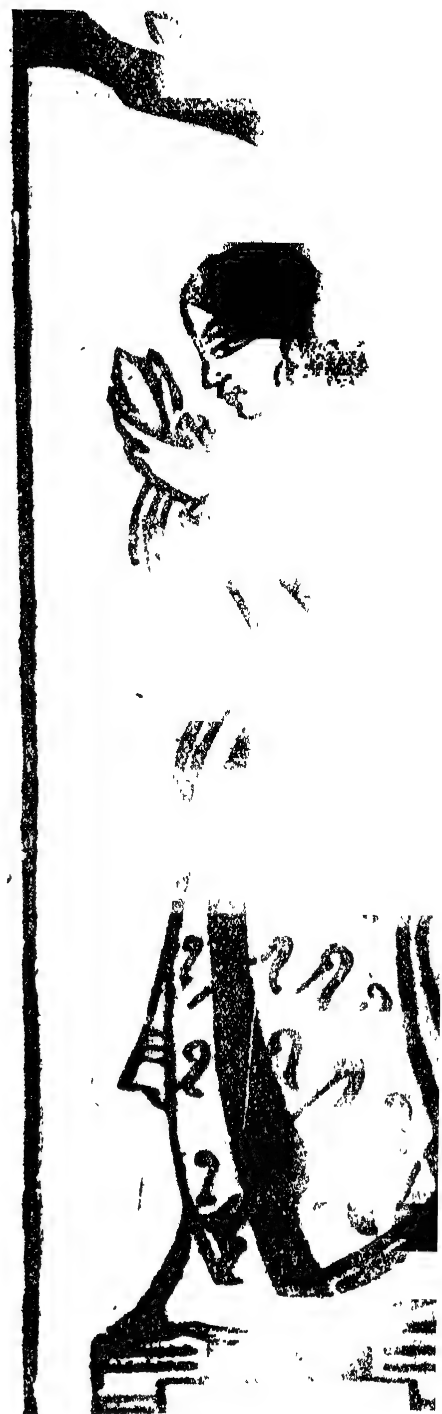
हे आर्यों की गौरव विभूति !
तुम जीवन में मत अमा बनो
कल्याण-अमृत की वर्षा हो
तुम आशा की पूर्णिमा बनो !

तुम जगद्धात्रि ! जग कल्याणी !
तुम महाशक्ति ! सोचो क्या हो,
कविते ! केवल तुम नहीं अश्रु
जीवन में जय की आत्मा हो !

तुम कर्मगान गाओ जननी !
तुम धर्मगान गाओ धन्ये !
तुम राष्ट्र धर्म की दीक्षा दो,
तुम करो राष्ट्र-रक्षण पुण्ये !

गाओ आशा के दिव्य गान,
गाओ, गाओ भैरवी-तान
युग युग का घन तम हो विलीन
फूटे युग में नूतन विहान !

कल्मष छूटे अंतरतम का
गाओ पावन संगीत आज,
आगे जग में मंगल-प्रभात
गाओ वह मंगल-गीत आज !







उमंग

उठ उठ री मानस की उमंग !
भर जीवन में नव रक्त-रंग !

उठ सागर सी गहराई सी,
पर्वत की अमित उँचाई सी,
नभ की विशाल परछाहीं सी,

लय हों अग जग के रंग ढंग !
उठ उठ री मानस की तरंग !

छा जीवन में बन एक आग,
अनुराग रहे या हो विराग,
चमके दोनों में आत्मत्याग;

जल जल चमकूं मैं वह्नि-रंग !
उठ उठ री मानम की उमंग !

प्रण में मरने की जगा साख,
रण में मर कर मैं बनूं राख,
उठ पड़ें राख से लाख लाख,

शर से भर कर खाली निषंग !
उठ उठ री मानस की उमंग !





प्रण में मरने की जगा साख,
रण में मरकर मैं बनूं राख;
उठ पड़ें राख से लाख लाख
भर कर शर से खाली निषंग !

पृष्ठ १६०

College of Arts ...
Hindi Seminar L...
... UNIVERSITY
No.........



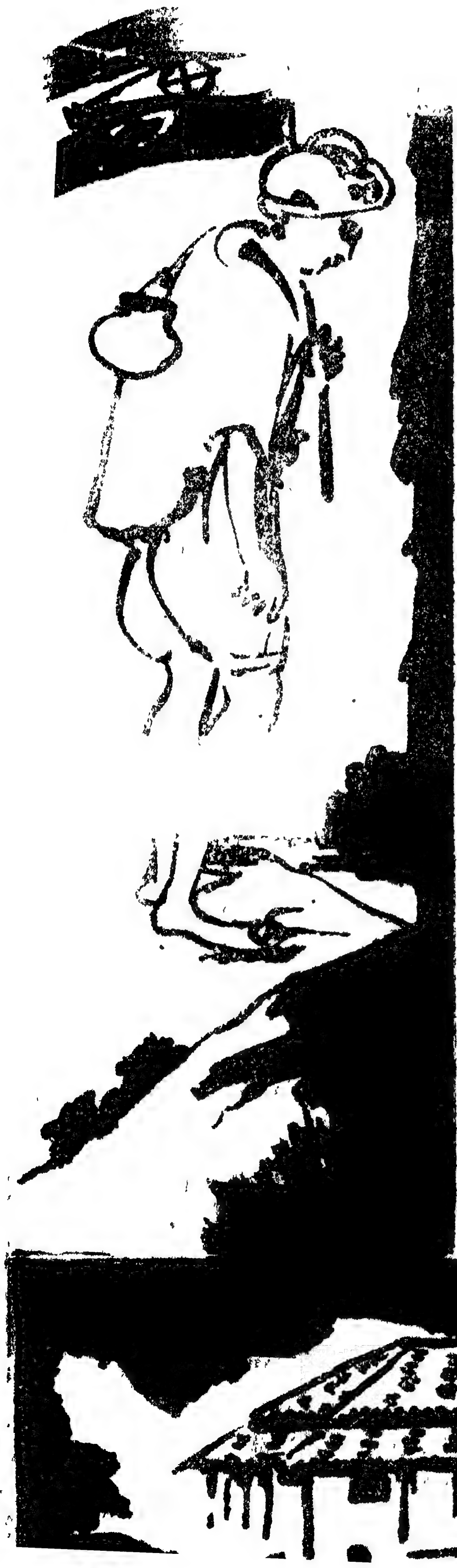
कवि से

ओ नवयुग के कवि जाग जाग !

प्राचीन पुरातन कलाकार
वैभव-बंधन में हुए लीन,
महलों को तज झोपड़ियों में
कब उनके मन की बजी बीन ?

यह गुरु कलंक का पंक मेट
बनकर शोषित के अभयगान,
नंगा भूखा प्यासा समाज
देखता राह तेरी, महान !

नवजीवन के रवि ! जाग जाग !
ओ नवयुग के कवि ! जाग जाग !



हैं एक ओर, पीड़ित जनता,
है एक ओर, साम्राज्यवाद,
गा रे, जनगण के शक्ति-गीत
जिससे टूटे युग का प्रमाद,

पिस गई हमारी रीढ़ आह !
ढोया है अब तक राज्य-भार
बल का संबल दे दुर्बल को
वह उठे आज निज को निहार !

नव चेतन की छवि ! जाग जाग !
ओ नवयुग के कवि ! जाग जाग !

गा ओ मेरे युग के गायक
वह महाक्रान्ति का अभय गान,
झुलसें जिसकी ज्वालाओं में
अगणित अन्यायों के वितान !

रूढ़ियाँ, अंध-विश्वास घोर
जड़ जीवन का रे तिमिर चीर !
आलोक सत्य का फैला दे
बह चले मुक्त जीवन-समीर !

ओ नव बलि की हवि ! जाग जाग !
ओ नवयुग के कवि ! जाग जाग !



कवि और सम्राट्

अकबर और तुलसीदास
दोनों ही प्रकट हुए एक समय, एक देश,
कहता है इतिहास;

'अकबर महान'
गूंजता है आज भी कीर्ति-गान,

वैभव प्रासाद बड़े
जो थे सब हुए खड़े
पृथ्वी में आज गड़े!
अकबर का नाम ही है शेष सुन रहे कान!



किन्तु कवि तुलसीदास !
धन्य है तुम्हारा यह
रामचरित का प्रयास,
भवन यह तुम्हारा अचल
सदन यह तुम्हारा विमल
आज भी है अडिग खड़ा,
उत्सव उत्साह बड़ा,
पाता है वही जो जाता है कभी वहां !
एक हुए सम्राट्
जिनका विभव विराट्
एक कवि,—रामदास
कौड़ी भी नहीं पास,
किन्तु, आज वीर महाकालों की
तालों को,
गूँजती है नृपति की नहीं,
कवि की ही वाणी गँभीर !
अकबर महान जैसे मृत
तुलसीदास अ-मृत !





अखंड भारत

तुम कहते——मैं लिखूं तुम्हारे
लिए नई कोई कविता,
मै कहता——क्या लिखूं? अस्त है
अपने गौरव का सविता!

कलम बंद, मुंह बंद, लिखूं फिर
क्या मैं अब तुमको साथी!
आज चले वे संग छोड़, पथ मोड़,
कि जिनसे आशा थी।

राजा की मति रंक हुई, तब
औरों की हो क्या गणना?
ये अखंड-भारत को खंडित
करने चले समझ बढ़ना।





क्या बतलाऊँ—बड़े बुजुर्गों की
तुमको बहकी बातें?
जो दिन समझ ला रहे हैं,
अपने ही आँगन में रातें!

'बुद्धिभेद जनयेत् न कदाचित्'
क्या इनसे कहना होगा?
'पंक्ति भेद है पाप' अलग हो!
याकि अलग रहना होगा।

क्या ग़ैरों से लोहा लेंगे,
जब घर में ही फूट हुई?
जो भी संघ-शक्ति थी अपनी
पथ में उसकी लूट हुई!

आज बहाने चले भगीरथ
उलटी गंगा की सरिता!
तुम कहते—मैं लिखूँ तुम्हारे
लिए नई कोई कविता!!



उद्बोधन

मेरे हिन्दू औ' मुसलमान!
रे अपने को पहचान जान!

हम लड़ जाते हैं आपस में
मंदिर मसजिद हैं लड़ जातीं,
हम गड़ जाते हैं धरती में
मंदिर मसजिद हैं गड़ जातीं।

मंदिर मसजिद से ऊपर हम
रे अपने को पहचान जान!

हम यवन बताते हैं तुमको
तब यवन बताते हैं पुराण,
तुम काफ़िर कहते हो हमको
तब क़ाफ़िर कहती है क़ुरान।







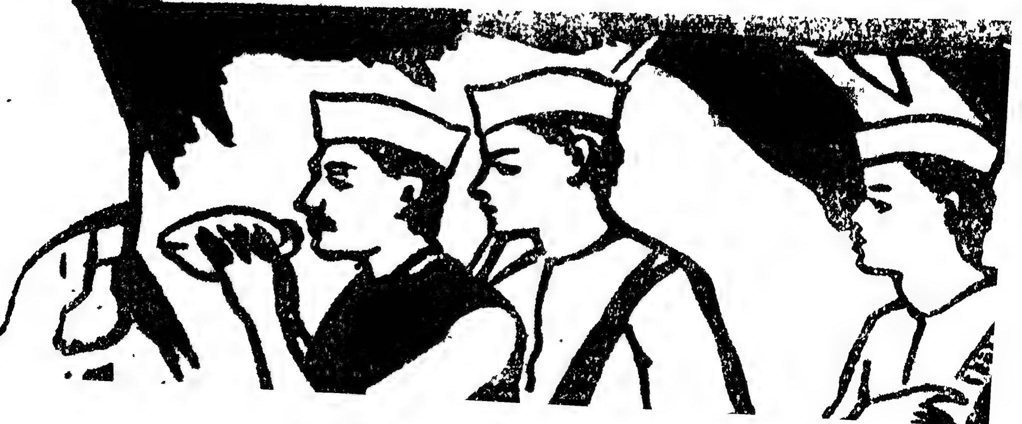
गीता क़ुरान से ऊपर हम
रे अपने को पहचान जान!

हम चले मिटाने जब तुमको
बेचारी दाढ़ी कट जाती,
तुम चले मिटाने जब हमको
बेचारी चोटी छट जाती।

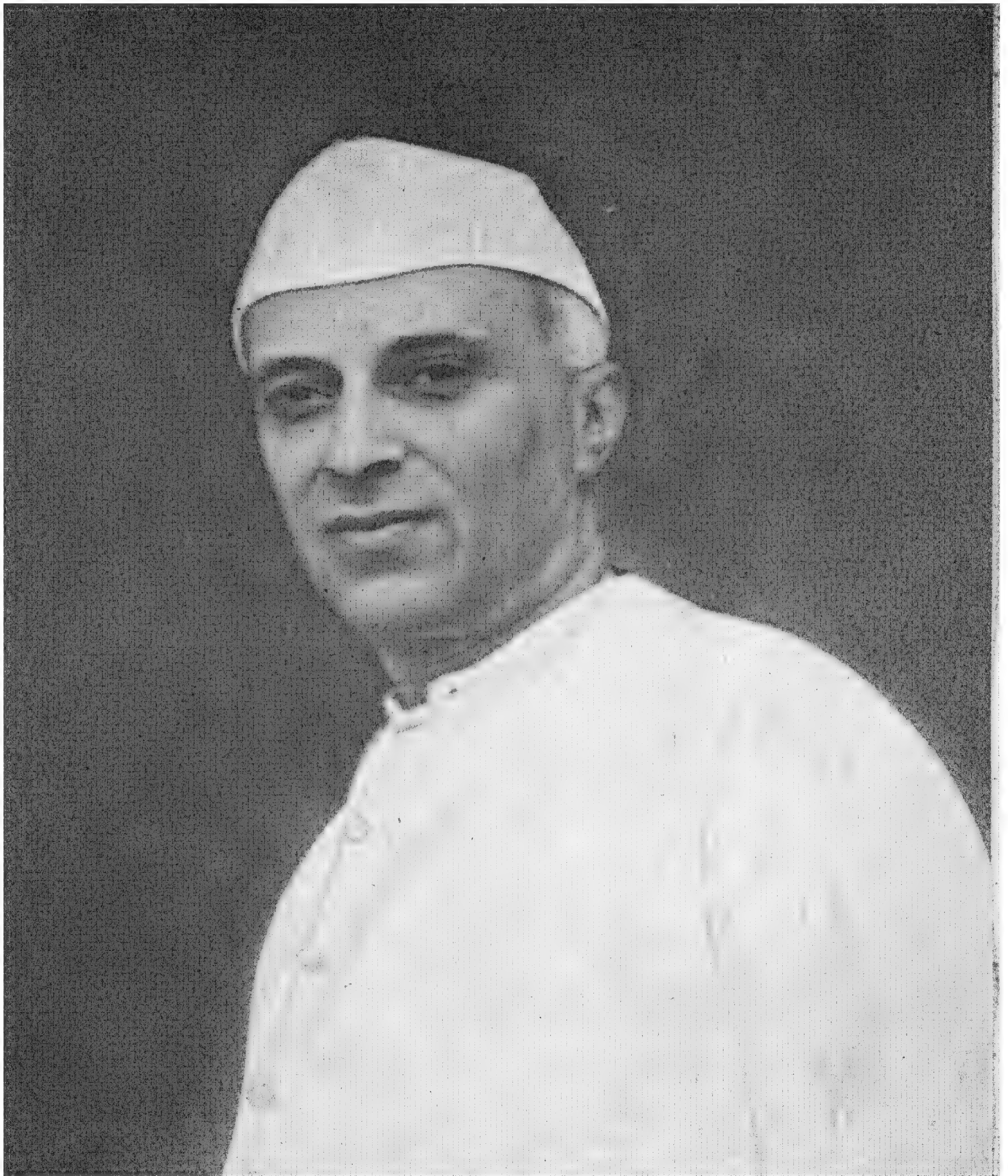
दाढ़ी चोटी से ऊपर हम
रे अपने को पहचान जान!

हम शत्रु समझते हैं तुमको
इतिहास शत्रु बतलाता है,
हम मित्र समझते हैं तुमको
इतिहास मित्र बतलाता है!

इतिहासों से ऊपर हैं हम
रे अपने को पहचान जान।



*



बोल उठीं गंगा की लहरें, यह है वह नर नाहर,
जिसकी जग में विमल ज्योति, माता का लाल जवाहर !

पृष्ठ——३७



विक्रमादित्य

वह था जीवन का स्वर्णकाल,
जब प्रात प्रथम था मुसकाया;

क्षिप्रा की लहरों में केसर कुंकुम का जल था लहराया!

आलोक अलौकिक छाया था,
वरदान धरा ने पाया था,

विक्रमादित्य के व्याज स्वयं आदित्य तिमिर में था आया!

वैभव विभूति के पद्म खिले,
सुख के सौरभ से सद्म खिले,

बहता मलयज संगीत लिए आनन्द चतुर्दिक था छाया!



कवि कालिदास की वरवाणी,
गाती थी गौरव कल्याणी,

नव मेघदूत के छंदों ने मकरंद मेघ था बरसाया !

नवरत्नों की वह कीर्ति कथा,
बनती प्राणों में मधुर व्यथा,

वह दिन कितना सुंदर होगा, जब था इतना वैभव छाया !

उज्जैन अवंती का वैभव,
दिशि-दिशि करता फिरता कलरव,

उस दिन, दरिद्रता धनी बनी, सबने ही था सब कुछ पाया !

इतिहास न वह भूला मेरा,
डाला विदेशियों ने घेरा;

यह विक्रम ही का विक्रम था, पल में पदतल अरिदल आया !

उस विजय दिवस की स्मृति स्वरूप
प्रचलित विक्रम संवत् अनूप,

ये दिवस, मास, वे पुण्य पृष्ठ, जब जय-ध्वज हमने फहराया !

उस दिन की सुधि से है निहाल,
हिमगिरि का उन्नत उच्च भाल,

गंगा-यमुना की लहरों में, अमृत-जल करता लहराया !

अशोक की हिंसा से विरक्ति !

क्यों दहक रहा उर बना अनल ?

यह भीषण नर-संहार हुआ,
प्रतिपल में हाहाकार हुआ,
मरघट सा सब संसार हुआ,
पर, नहीं शान्ति संचार हुआ,

क्यों अमृत आज बन रहा गरल ?
क्यों दहक रहा उर बना अनल ?

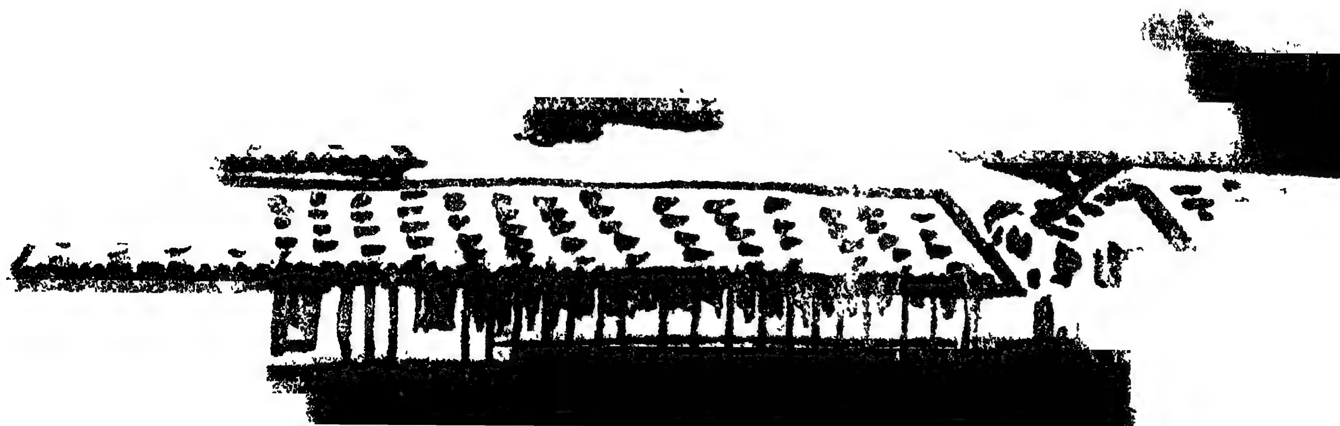
सिंहासन पर सिंहासन नत,
मानव पर मानव हैं हत-मृत !
मुकुटों पर मुकुट मिले श्रीहत,
राज्यों पर राज्य हुए कर-गत !

फिर भी, मन क्यों लगता निर्बल ?
क्यों दहक रहा उर बना अनल ?

खड्गें बन शोणित की प्यासी !
बन महाकाल की रसना-सी,
दौड़ीं बन वीरों की दासी ?
पी गईं रक्त, जल-तृष्णा-सी;

अब तक न हुआ यह मन शीतल ?
क्यों दहक रहा उर बना अनल ?







विजयी कलिंग है पड़ा ध्वस्त !
दंभी का बल भी हुआ त्रस्त !
बैरी का दिनकर हुआ अस्त,
किस उलझन में है विश्व व्यस्त ?

क्यों थका हुआ है सब भुजबल ?
क्यों दहक रहा उर बना अनल ?

कब तक के लिए राज्य का मद ?
कब तक के लिए राज्य का पद ?
दो दिन मानव हो ले उन्मद,
शोणित के विपुल बहा ले नद !

पर, व्यर्थ विजय-उन्माद सकल !
क्यों दहक रहा उर बना अनल ?

दो दिन ही के हित यह महान !
वैभव सुख संपति का विधान,
मानव है कितना विगत-ज्ञान ?
जो परम सत्य भूला निदान !

फिर, दुःख क्यों न हो उसे सरल ?
क्यों दहक रहा उर बना अनल !

मिट रही आज है सभी भ्रान्ति,
मिलती है मन को आज शान्ति,
करुणा की कैसी कनक-कान्ति,
हो रही तिरोहित चिर अशान्ति,

निर्बल पर क्रूर बने न सबल !
करुणा दे अग-जग को मंगल !





अहिंसा-अवतरण

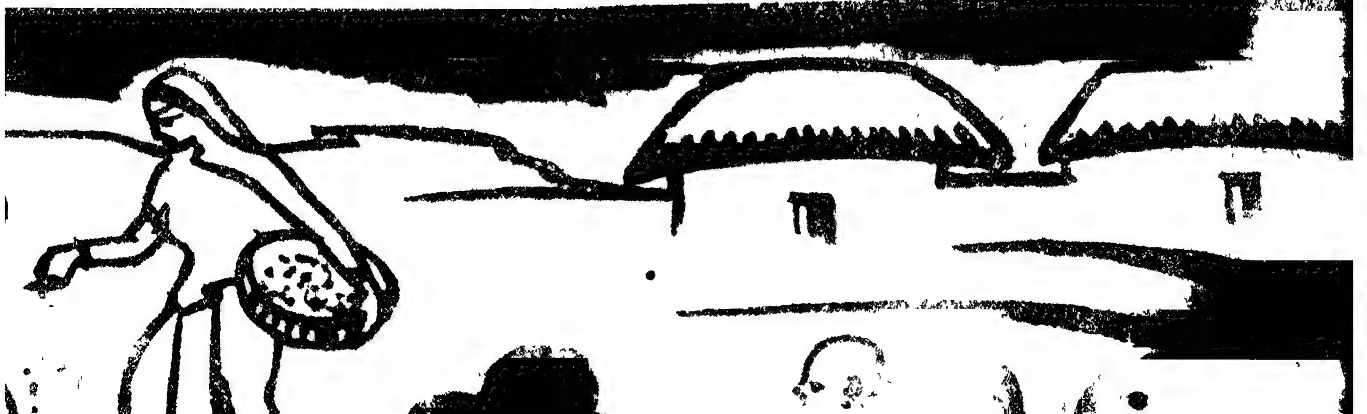
तभी मैं लेती हूँ अवतार!

महा-क्रान्ति हुंकार लिए जब
करती नर - संहार,
रक्त - धार में उतराने
लगता समस्त संसार;

सहम जाते हैं बुद्धि विचार,
तभी मैं लेती हूँ अवतार!

कर्मकाण्ड की लिए दुहाई
नर करते नरमेध,
किन्हीं दीन प्राणों की
आहें जातीं अंबर भेद;

बहाते तारक आंसू धार,
तभी मैं लेती हूँ अवतार!





जब कलिंग जय की लिप्सा में
पीते सुरा अशोक,
विजय एक दिन बन जाती है
अंतरतम का शोक;

उमड़ता उर में हाहाकार
तभी मैं लेती हूँ अवतार!

मैं अपने शीतल अंचल में
लेकर जलता लोक,
चंदन का अनुलेपन करती
खिलते सुख के कोक;

न आती फिर दुख भरी पुकार
कि जब मैं लेती हूँ अवतार!



कोटि प्रणाम !

कोटि कोटि नंगों भिखमंगों के जो साथ,
खड़े हुए हैं कंधा जोड़े, उन्नत माथ,
शोषित जन के पीड़ित जन के कर को थाम,
बढ़े जा रहे उधर, जिधर है मुक्ति प्रकाम;

ज्ञात नहीं है
जिनके नाम !
उन्हें प्रणाम !
सतत प्रणाम !

भेद गया है दीन-अश्रु से जिनका मर्म,
मुहताजों के साथ न जिनको आती शर्म,
किसी देश में किसी वेश में करते कर्म,
मानवता का संस्थापन ही है जिनका धर्म !

यौवन में ही लिया जिन्होंने है वैराग,
मातृभूमि का जगा जिन्हें ऐसा अनुराग !
नगर नगर की ग्राम ग्राम की छानी धूल,
समझे जिससे सोई जनता अपनी भूल,





उन्हें प्रणाम
कोटि प्रणाम !

कोटि कोटि नंगों भिखमंगों के जो साथ,
खड़े हुए हैं कंधा जोड़े, उन्नत माथ—
शोषित जन के पीड़ित जन के कर को थाम,
बढ़े जा रहे उधर, जिधर है मुक्ति प्रकाम;

जिनके गीतों के पढ़ने से मिलती शान्ति,
जिनकी तानों के सुनने से झिलती भ्रान्ति,
छा जाती मुखमंडल पर यौवन की कान्ति,
जिनकी टेकों पर टिकने से टिकती क्रान्ति !

मरण मधुर बन जाता है जैसे वरदान,
अधरों पर खिल जाती है मादक मुसकान,
नहीं देख सकते जग में अन्याय वितान,
प्राण उच्छ्वसित होते, होने को बलिदान !

जो घावों पर मरहम का
कर देते काम !
उन्हें प्रणाम
सतत प्रणाम

कोटि कोटि नंगों भिखमंगों के जो साथ,
खड़े हुए हैं कंधा जोड़े, उन्नत माथ—
शोषित जन के पीड़ित जन के कर को थाम,
बढ़े जा रहे उधर, जिधर है मुक्ति प्रकाम;

उन्हें प्रणाम !
सतत प्रणाम !
कोटि प्रणाम !

उन्हें जिन्हें है नहीं जगत में अपना काम
राजा से बन गये भिखारी तज आराम,
दर दर भीख माँगते सहते वर्षा घाम,
दो सूखी मधुकरियाँ दे देतीं विश्राम !

जिनकी आत्मा सदा सत्य का करती शोध,
जिनको है अपनी गौरव गरिमा का बोध,
जिन्हें दुखी पर दया, क्रूर पर आता क्रोध,
अत्याचारों का अभीष्ट जिनको प्रतिशोध !

प्रणत प्रणाम !
सतत प्रणाम !

कोटि कोटि नंगों भिखमंगों के जो साथ
खड़े हुए हैं कंधा जोड़े, उन्नत माथ।
शोषित जन के पीड़ित जन के कर को थाम
बढ़े जा रहे उधर, जिधर ही मुक्ति प्रकाम।

जंजीरो में कसे हुए सिकचों के पार,
जन्म-भूमि जननी की करते जय जय कार !
सही कठिन हथकड़ियों की बेतों की मार,
आजादी की कभी न छोड़ी टेक पुकार;

स्वार्थ, लोभ, यश, कभी सका है जिन्हें न जीत,
जो अपनी धुन के मतवाले मन के मीत;





ढाने को साम्राज्यवाद की दृढ़ दीवार,
बार बार बलिदान चढ़ प्राणों को वार;

बंद सीकचों में जो हैं
अपने सरनाम
उन्हें प्रणाम !
सतत प्रणाम !

कोटि कोटि नंगों भिखमंगों के जो साथ,
खड़े हुए हैं कंधा जोड़े, उन्नत माथ—

शोषित जन के—
बढ़े जा रहे—

उन्हीं कर्मठों, ध्रुवधीरों को है प्रतियाम
उन्हें प्रणाम !
प्रणत प्रणाम !
सतत प्रणाम !
कोटि प्रणाम !

जो फांसी के तख़्तों पर जाते हैं झूम,
जो हँसते हँसते शूली को लेते चूम
दीवारों में चुन जाते हैं जो मासूम
टेक न तजते पी जाते हैं विष का घूम !

उस आगत को जो कि अनागत दिव्य भविष्य,
जिसकी पावन ज्वाला में सब पाप हविष्य !
सब स्वतंत्र, सब सुखी जहाँ पर, सुख विश्राम !
नव युग के उस नव प्रभात को कोटि प्रणाम !





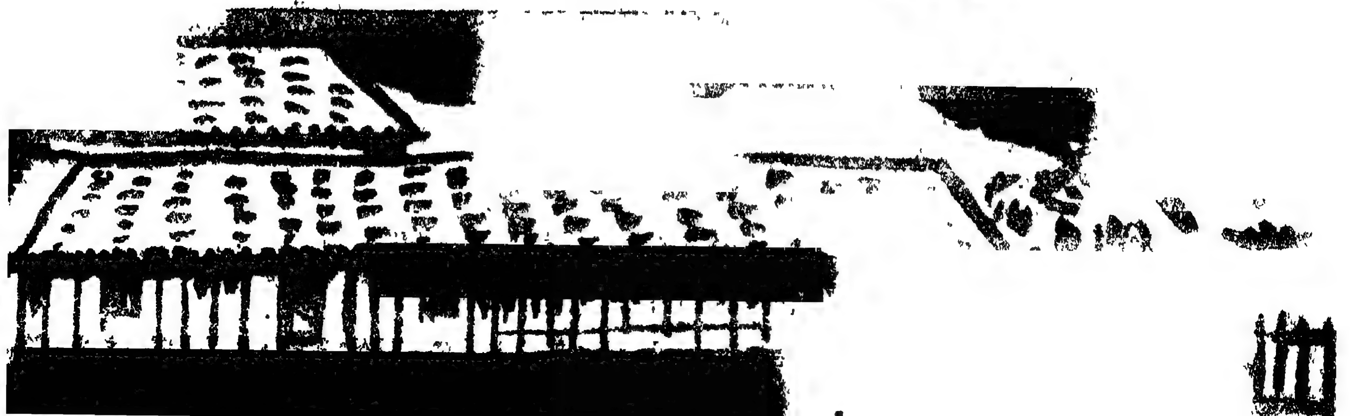
पथ-गीत

धधक रही है यज्ञकुंड में
आत्माहुति की शीतल ज्वाला,
होता! पड़े न मंद हुताशन
नव नव अभिनव आहुतियाँ ला।

चल यौवन का दान लिए चल
जीवन का वरदान लिए चल,
अधरों पर मुसकान लिए चल
प्राणों के बलिदान लिए चल।

शूरों का सम्मान लिए चल
वीरों का अभिमान लिए चल,
जय जननी के गान लिए चल
आहत के अरमान लिए चल।

प्राणों में युग युग की ज्वाला
श्वासों में युग युग की आँधी,
शोणित में युग युग का घृत ले
चल रे! हव्य माँगता गाँधी।





आज़ादी के फूलों पर

सिंहासन पर नहीं वीर !
बलिवेदी पर मुसकाते चल !
ओ वीरों के नये पेशवा !
जीवन-ज्योति जगाते चल !

रक्तपात, विप्लव अशान्ति
औ' कायरता बरकाते चल।
जननी की लोहे की कड़ियाँ
रह रहकर सरकाते चल !

पग-पग में हो सिंह-गर्जना
दिशि डोलें, झंकार उठे,
जागें सोयें जलियाँवाले
यों तेरी हुंकार उठे !

है तेरा पांचाल प्रबल
बंगाल विमल विक्रमवाला,
महाराष्ट्र सौराष्ट्र, हिन्द,
अपने प्रण पर मिटनेवाला;



हैं बिहार गुणगौरववाला
उत्कल शक्ति-संघवाला,
बलिवाला गुजरात, सुदृढ़
मद्रास, भक्ति वैभववाला;

फिर क्यों दुर्बल भुजा हमारी
कैसी कसीं लोह-लड़ियाँ?
अँगड़ाई भर ले स्वदेश
टूटें पल में कड़ियाँ-कड़ियाँ!

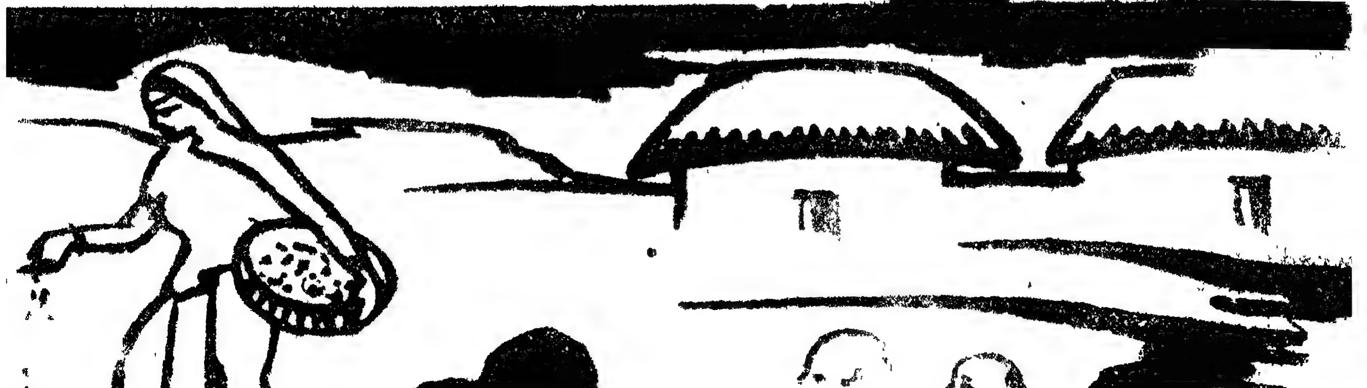
आयें हम नंगे भिखमंगे
सब भूखों मरनेवाले।
अपनी हड्डी-पसली खोले,
रक्त-दान करने वाले

खुरपी और कुदालीवाले,
फड़ुआ औ' फरसेवाले।
महाकाल से रात-दिवस
दो टुकड़ों पर लड़नेवाले!

फूंक शंख, बाजे रणभेरी,
जननी की जय जय बोलें।
चले करोड़ों की सेना
डगमग डगमग धरणी डोले!

चढ़ जायें चालिस करोड़ फिर
बलि के मधुमय झूलों पर,
मेरी माँ भी चले बिहँसती
आजादी के फूलों पर।







ओ प्रबल तूफ़ान

अरुण आँखों में रहें, घिरते
प्रलय के मेघ,
भाल में बिजली चमकती हो
सघन सम वेग,

अभय मुद्रा में उठा हो हाथ
बन वरदान,
मस्तकों पर पथ बना, चल
ओ प्रबल तूफ़ान!

बढ़ उधर, हुंकार भर, हो
जिधर गर्जन घोर,
छीन ले झंडा कि जिनका
घट गया हो जोर।

आज मानवता तुझे ही
देखते हे वीर!
आँख में आँसू न हो, वह
खींच दे तस्वीर।





तैयार रहो

मेरे वीरो ! तैयार रहो,
रणभेरी बजनेवाली है,
मेरे तीरो ! तैयार रहो,
फिर टोली सजनेवाली है !

शाबाश ! शूरवीरो मेरे,
शाबाश ! समरधीरो मेरे !
शाबाश ! जननि के चरणों में
लुटनेवाले हीरो मेरे !

मंजिल थोड़ी ही शेष रही,
साहस ले उर में चले चलो,
मुसकानों से बलिदानों से,
बाधा-विघ्नों को दले चलो।

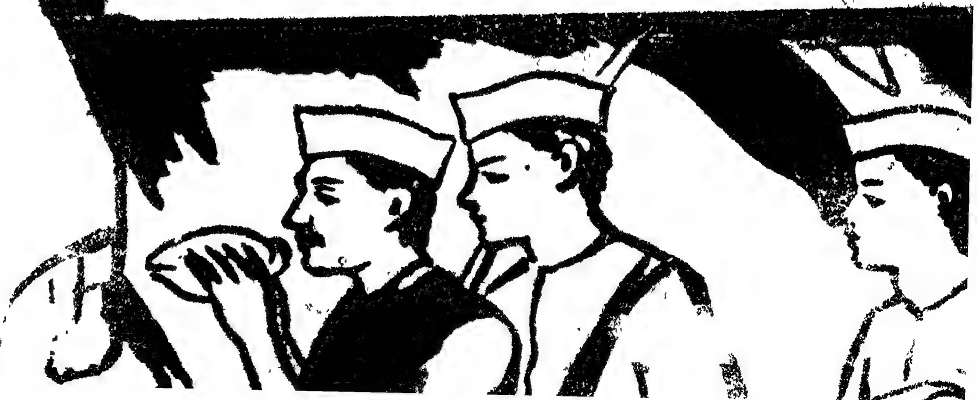




शूरो वीरों के शोणित का
अभिमान लिये तैयार रहो,
आहत जननी के अंतस के
अरमान लिये तैयार रहो।

तैयार रहो मेरे वीरो,
फिर टोली सजनेवाली है।
तैयार रहो मेरे शूरो,
रणभेरी बजनेवाली है!

इस बार, बढ़ो समरांगण में,
लेकर मर मिटने की ज्वाला,
सागर-तट से आ स्वतन्त्रता,
पहना दे तुमको जयमाला!





राष्ट्र-सेनानी

खिल उठी हैं राष्ट्र की तरुणाइयाँ !
आज प्राची में फटी अरुणाइयाँ !
यह नहीं भूकम्प है या है प्रलय,
ली जवानी ने फ़क़त अँगड़ाइयाँ !

ये चले क्या ? क्रान्ति के नारे चले,
और नभ पर खिसकते तारे चले !
है चिता की भस्म मस्तक पर लगी,
ये धधकते लाल अंगारे चले !





राष्ट्र-ध्वजा

हमारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।
तुम्हारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।

बम बरसे या बरसे गोली,
बढ़े देशभक्तों की टोली,
मस्तक पर हो रण की रोली,

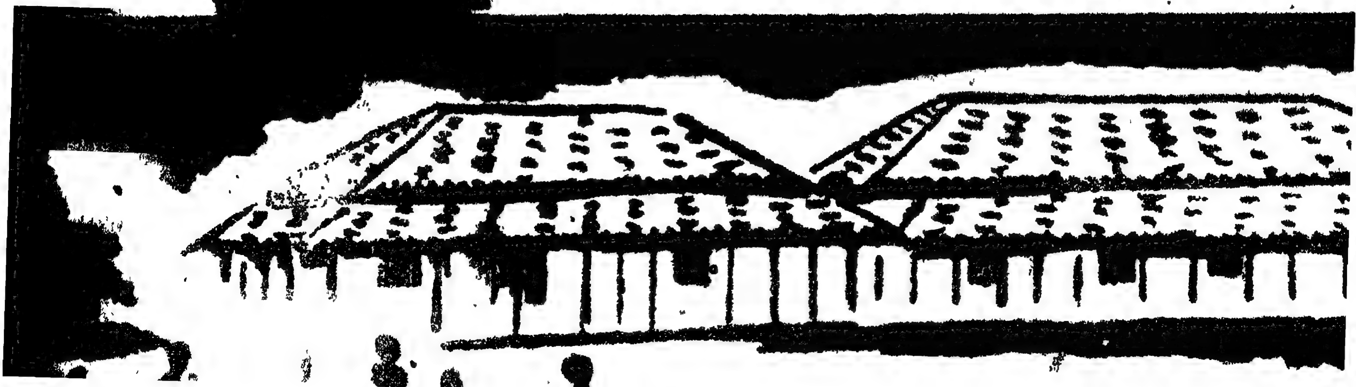
डगमग डगमग धरणी डोले,
जय जय ध्वनि घहरे।

हमारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।
तुम्हारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।

राष्ट्र सैन्य का वीर सिपाही,
बन कर अपने युग का राही,
दूर करेगा सब गुमराही,

स्वतंत्रता हो लक्ष्य हमारा
शत्रु देख हहरे!

हमारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।
तुम्हारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।



बहुत सहे हैं हमने शासन,
कमर तोड़ सिरपर सिंहासन,
आज प्रलय हो हो, परिवर्तन,

शोषित पीड़ित आज जगे हैं,
जय - निशान लहरे !

हमारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।
तुम्हारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।

उठे राष्ट्र का ऊँचा नारा,
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा,
कौन हमें कर सकता न्यारा ?

छू सकते साम्राज्य न इसको,
भीरु देख भहरे।

हमारी राष्ट्र-ध्वजा फहरे।
तुम्हारी राष्ट्र-ध्वजा फहरे।

उड़े देश में राष्ट्र - पताका,
रोके बढ़ बैरी का नाका,
चले राष्ट्र-भक्तों का साका,

अन्यायों का सर्वनाश हो,
आज न्याय ठहरे !

हमारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।
तुम्हारी राष्ट्र - ध्वजा फहरे।





राष्ट्रपति सुभाषचंद्र

नवयुवकों में नव उमंग
की नई लहर लहराते चल!
देशप्रेम की पावन गंगा
पग पग पर छहराते चल,

राष्ट्र-ध्वजा नीलांबर का
अंचल छूते फहराते चल!
स्वतंत्रता के मधुर युद्ध के
घन घमंड घहराते चल,

चमको राष्ट्र-गगन - मंडल में,
चूमे चरण सिंधु मेरे,
मेरे वीर सुभाषचंद्र!
सौभाग्य-चंद्र बन आ मेरे!



पूजा गीत

१

अंतरतम में ज्योति भरो हे!

जहाँ जहाँ नत मस्तक पाओ,
वहाँ वहाँ युग चरण बढ़ाओ,

मेरे मंगलमय! दुर्बल पर
निज कर-पल्लव सबल धरो हे!

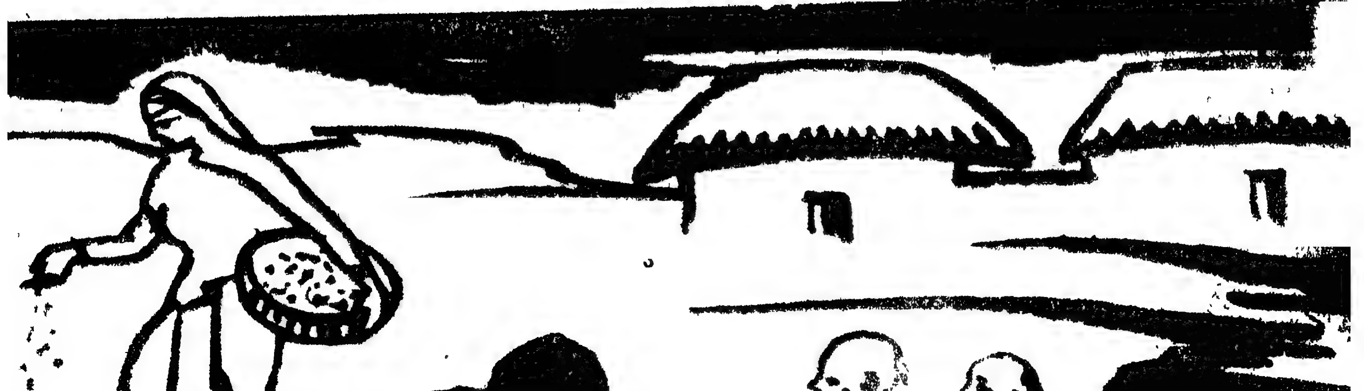
अंतरतम में ज्योति भरो हे!

जहाँ जहाँ पर देखो कारा,
वहीं बहाओ करुणा-धारा,

बंधन मुक्त करो युग युग के
पाप-ताप अभिशाप हरो हे!

अंतरतम में ज्योति भरो हे!







२

अभय करो हे!

युग युग का जड़ प्रमाद,
छिन्न करो विष-विषाद,
नव बल का दो प्रसाद,

निर्बल तन, निर्बल मन, ओज भरो हे!

अभय करो हे!

नयनों में तम अपार,
करुणा की किरण ढार,
खोल प्राण - रुद्ध - द्वार,

नूतन पथ, नूतन रथ, सूत्र धरो हे!

अभय करो हे!

शिर पर हो वरद हस्त,
क्यों फिर हो देश त्रस्त?
नव कृति में सकल व्यस्त,

युग युग के बंधन चिर, अचिर हरो हे!

अभय करो हे!





मुक्ति की दात्री ! तुम्हीं हो
मुक्ति की ही याचिनी ?

अन्नपूर्णे ! तुम क्षुधित हो ?
फिर न क्यों मानस मथित हो ?

देवि ! यह दुर्दैव कैसा
आज तुम रजवासिनी ?

केश रूखे, धूलि लुंठित;
बनी वीणा-वाणि कुंठित,

राजराजेश्वरि ! बनी हो
आज तुम कंगालिनी !





है फटा अंचल लहरता,
बन दरिद्र-ध्वजा फहरता,

रत्न-आभरणे ! बनी तुम
आज पथ-भिखारिणी !

है कहाँ वह पूर्व महिमा ?
है कहाँ वह दर्प गरिमा ?

आदिशक्ति ! अशक्ति कैसी ?
पद-दलित अभिमानिनी !

अंग पर है गलित कंथा,
चल रही तुम विषम पंथा,

ओ शिवे ! यह वेश कैसा ?
अशिव चित्तविदारिणी !

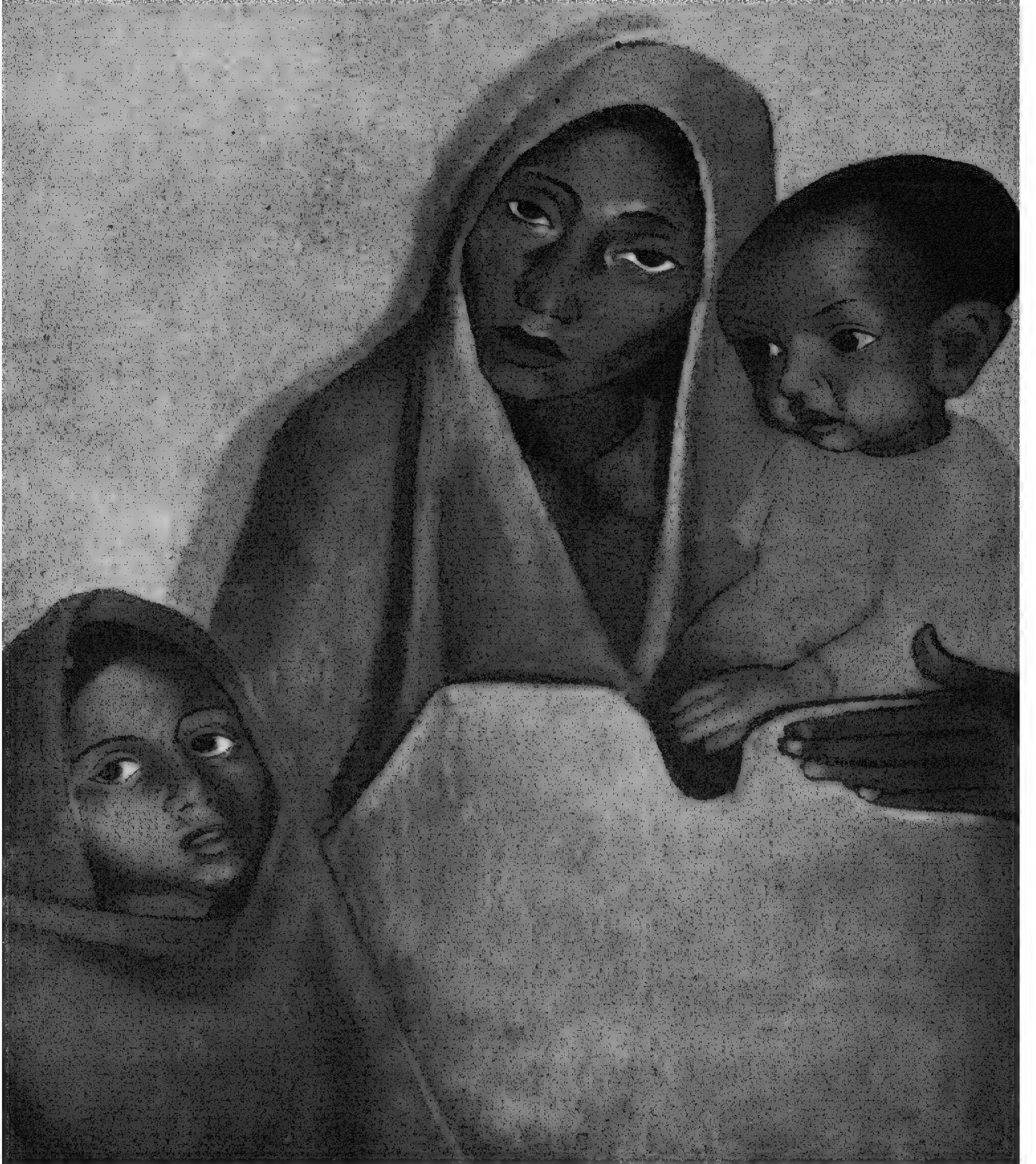
स्तन्य-पय मयि ! अमृत-स्राविणि !
जननि ! उठ ओ जन्मदायिनि !

कोटि कोटि सपूत तेरे
तू नहीं हतभागिनी !

जाग माँ ! ओ जगद्धात्री !
तू दया की बन न पात्री !

ले त्रिशूल सतेज कर में,
ओ त्रिशूल-विनाशिनी !





भारत-माता

चित्रकार : कुमारी अमृत शेरगिल

रत्नआभरणे ! बनी तुम ?
आज पंथ-भिखारिणी—

पृष्ठ—१९१

४

वंदिनी तव वंदना में
कौन सा मैं गीत गाऊँ ?

स्वर उठे मेरा गगन पर,
बने गुञ्जित ध्वनित मन पर,

कोटि कण्ठों में तुम्हारी
वेदना कैसे बजाऊँ ?

फिर, न कसकें क्रूर कड़ियाँ,
बनें शीतल जलन-घड़ियाँ,

प्राण का चन्दन तुम्हारे
किस चरण तल पर लगाऊँ ?

धूलि लुण्ठित हों न अलकें,
खिलें पा नव ज्योति पलकें,

दुर्दिनों में भाग्य की
मधु चन्द्रिका कैसे खिलाऊँ ?

तुम उठो माँ ! पा नवल बल,
दीप्त हो फिर भाल उज्ज्वल !

इस निविड़ नीरव निशा में
किस उषा की रश्मि लाऊँ ?





डिग न रे मन!

आज आर्त विषण्ण दीना,
मातृ-मुख है कान्ति क्षीणा,
अन्न-धन - सर्वस्व - हीना!

पूत ! आज सपूत बन तू
पोंछ रे माँ के नयन-कण!

डिग न रे मन !

सजल नयन निहारती है,
विकल व्यथित पुकारती है,
बुझ रही अब आरती है,

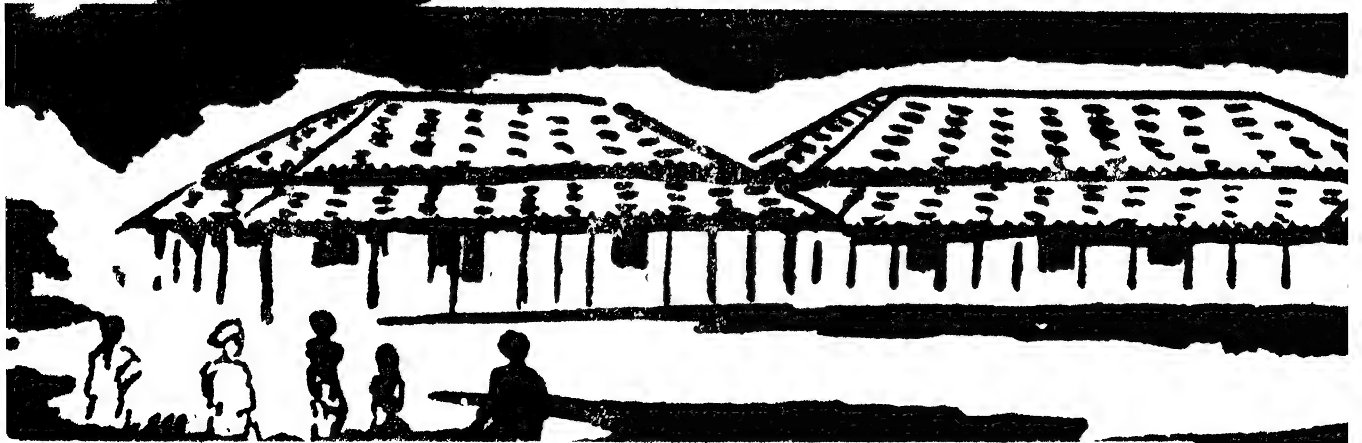
प्राण का घृत दे अमृत हे!
बने ज्योतित मन्द जीवन!

डिग न रे मन!

कसकती हैं क्रूर कड़ियाँ,
सिसकती हैं प्रहर घड़ियाँ,
तोड़ दे रे लौह-लड़ियाँ,

पुरुष! तव पुरुषत्व पर
है बज रही जंजीर झनझन!

डिग न रे मन!





६

जननी आज अर्ध क्षत-वसना !
खुलती नहीं तुम्हारी रसना !

यह जीवन ही जीवन है यदि,
तो तुम अब न जियो !

कसा शृंखलाओं में मृदु तन,
आह ! दुसह है यह उत्पीड़न !

बहुत सह चुके असह व्यथा है
यह व्रण आज सियो !

कोटि कोटि तुम जिसके त्राता !
क्षुधित तृषित अ-वसन वह माता !

अमृत दान दो अमृत-पुत्र हे !
या ले गरल पियो !





लौटो आज प्रवासी !

मधुपी बने न झूमो बन में,
मधु घोलो मत जग जीवन में,

आकुल नयन हेरते तुमको
दूर न हो अधिवासी !

लौटो आज प्रवासी !

क्यों तुम भूले अपनेपन को ?
क्यों न देखते उर के व्रण को ?

क्या प्राणों की वंशी में
बजती है नहीं उदासी ?

लौटो आज प्रवासी !

अब किस रस में मुग्धमना हो ?
किस आसव में स्निग्धमना हो ?

भस्म हो रहा भवन तुम्हारा
अब मत बनो विलासी !

लौटो आज प्रवासी !



सुन सकोगे क्या कभी
मेरी व्यथा की रागिनी ?

जलन की ये विषम घड़ियाँ,
फिर कसेंगी बन न कड़ियाँ,

कोटि कंठों में बजेगी,
यह अमत्व विहागिनी !

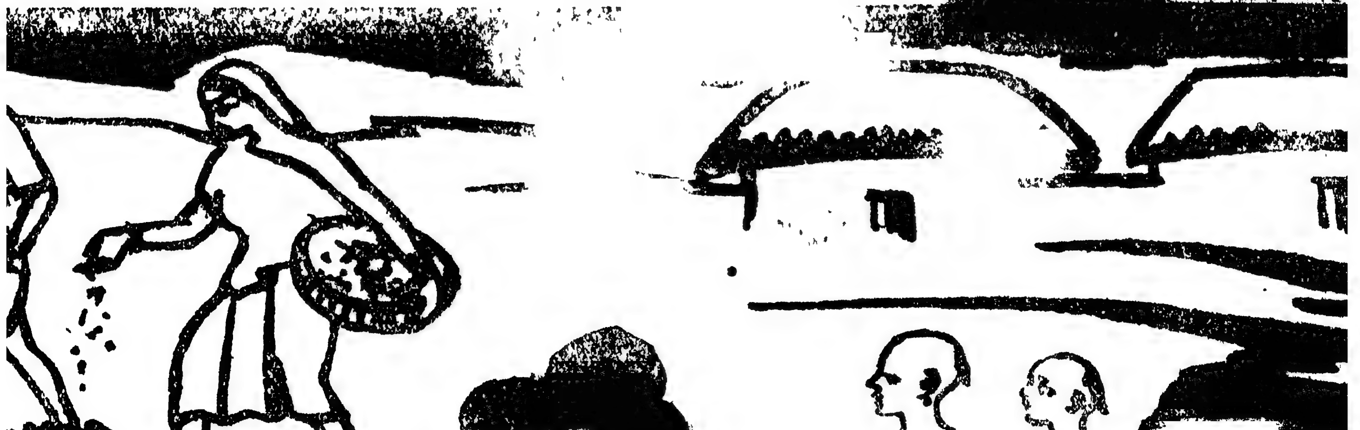
नयन में ढल आयेगा जल,
जायगा पाषाण उर गल,

मैं अभागिनि भी बनूँगी
क्या कभी बड़भागिनी ?

तुम सभी मिलकर चलोगे,
युगों के बंधन दलोगे,

फिर नहीं झनझन बजेगी
लौह की यह नागिनी !







यह हठ और न ठानो !

मंदिर क्या हैं नहीं तुम्हारे ?
मसजिद जिनकी, क्या वे न्यारे ?
मठ विहार किसके हैं सारे ?

सभी तुम्हारी गौरव गरिमा
निज को पहिचानो !

फिर लड़ते हो क्यों आपस में ?
कैसा बैर भरा नस नस में ?
तुम हो किस दानव के वश में ?

यह षड्‌यंत्र सिखाया किसने ?
तुम उसको जानो !

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई,
क्या न सभी हैं भाई भाई,
जन्मभूमि है सबकी माई !

क्यों न उठाकर कोटि भुजायें
जय - बितान तानो ?



१०

आज कवि ! जग !

त्याग अन्तःपुर, निरख
ये जा रहे हैं कौन दृग ठग ?
ध्वज तिरंगा सुदृढ़ कर में
ध्यान किसका आज उर में ?
जा रहे ले गर्व नव,
है छा रहे कैसे अरुण पग ?
आज कवि ! जग !
किधर है रण, कौन है प्रण ?
मौन हो ये सह रहे व्रण !
आज विचलित कर न पाता
क्यों इन्हें शोणित भरा मग ?
आज कवि ! जग !
चल रही है कौन आँधी ?
क्या कहा ? जा रहे गाँधी !
जागरण की कनक किरणें
कर रही हैं धरा जगमग !
आज कवि ! जग !
चलो मेरे कवि समर में,
क्या यहाँ सुनसान घर में ?
वहीं तान उठे तुम्हारी
बढ़े नव-बल पा सबल डग !
आज कवि ! जग !







११

नवयुग की शङ्ख-ध्वनि पथ पर।

तुम कैसे बैठे निर्जन में?
ले करके विषाद जीवन में,
क्या न रक्तकण कुछ यौवन में?

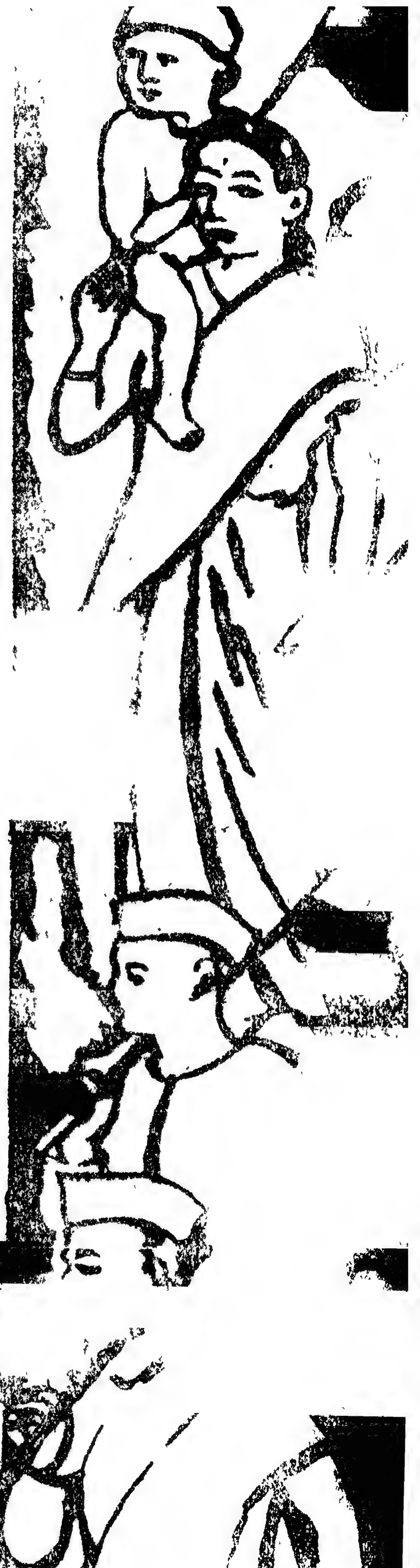
चढ़ो प्रलय के रथ पर।

बच न सकोगे इन लपटों से,
महाकाल की इन झपटों से,
अत्याचार छल कपटों से,

मुड़ो न भय के अथ पर।

झंझा को झड़ को बढ़ झेलो,
मेघों से बिजली से खेलो,
वज्र गिरे, छाती पर ले लो,

बढ़ो मृत्यु को मथकर।



१२

ओ हठीले जाग !

आज पलकों से निराली
अलस निद्रा त्याग !

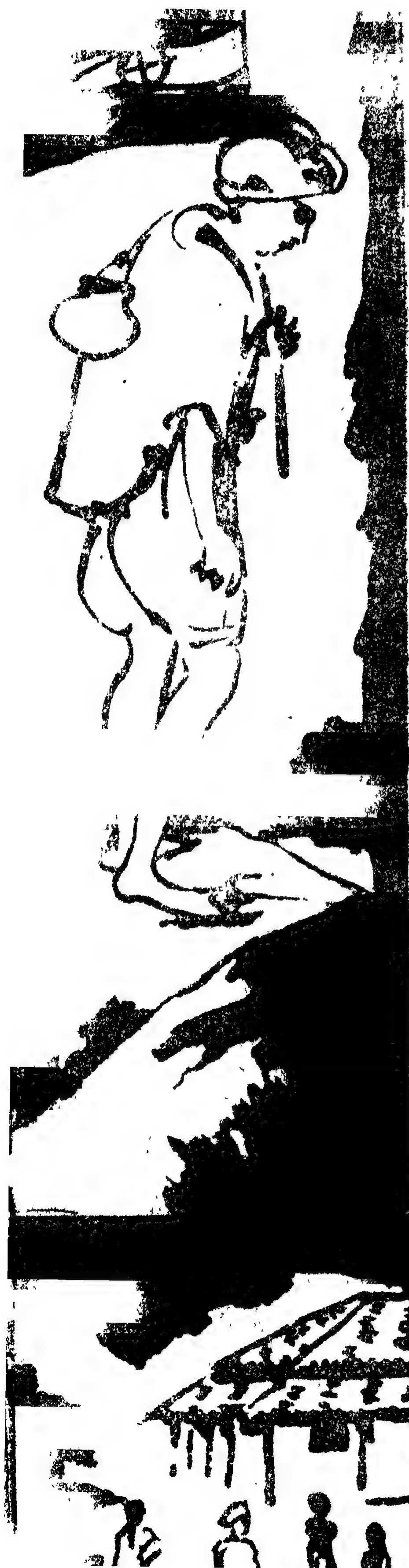
अब नहीं वे दिन सुनहले,
औ' रजत की रात,
अब न मधुऋतु, बह रही
पतझड़ भरी सी वात;
आज धूसर ध्वंस में
बजता असीम विहाग !
ओ हठीले जाग !

बुझ गये हैं विभव के
ये भव्य भवन प्रदीप,
जल रहे हैं आज गृह में
व्यथा के शत दीप !
धुल गया है भाल से
वह पूर्व अरुण सुहाग !
ओ हठीले जाग !

आज प्राची में खिलीं
किरणें मदिर रमणीय,
ला रहीं संदेश नव,
बेला बनी कमनीय,
आज नव निर्माण का
छिड़ने लगा है राग !
ओ हठीले जाग !

फा० २६





१३

ओ तपस्वी !
ओ तपस्वी !

आज इस रण की घड़ी में
यह सुभग शृंगार कैसा ?
इस प्रलय के काल में
यह प्रणय का अभिसार कैसा ?

ओ मनस्वी !
ओ तपस्वी !

जाग ! आँखें खोल, है
गत रात, अरुणिम प्रात आया,
बढ़ रहा है देश आज,
अशेष लेकर प्राण काया !

ओ निजस्वी !
ओ तपस्वी !

आज चल उस ओर—है
जिस ओर बलि चढ़ती जवानी,
रहे युग के भाल पर
तेरी अरुण जलती निशानी !

ओ यशस्वी !
ओ तपस्वी !

१४

आज मैं किस ओर जाऊँ ?

इधर है रण का निमंत्रण,
उधर कर में प्रेम कंकण;
भ्रमित, चकित, जड़ित बना मन,
मैं किधर निज पग बढ़ाऊँ ?

मृत्यु आलिङ्गन इधर है,
अधर का चुम्बन उधर है,
मधु भरे दोनो चषक हैं,
किन्हें प्राणों से लगाऊँ ?

त्याग दूँ क्या यह प्रलय पथ,
चलूँ चढ़ लूँ बढ़ प्रणय रथ,
इति बने यह द्वन्द्व का अथ,
मिलन में मंगल मनाऊँ ?

किन्तु, उधर पुकार आती,
विकल रव चीत्कार आती,
क्वणित बनती व्रणित छाती,
तब किसे कैसे भुलाऊँ ?

प्राण ! दो तुम भाल चंदन,
विदा दो, हो मातृ-वंदन,
शक्ति दो तुम भक्ति जागे,
मुक्ति-पथ पर शिर चढ़ाऊँ !
आज रण की ओर जाऊँ !





१५

आज युद्ध की बेला !

बुझे मशाल, न तेल डाल लो,
अस्त्र-शस्त्र अपने सँभाल लो,

हैं तोपें हुंकार भर रहीं,
बापू बड़ा अकेला !

आज युद्ध की बेला !

कोटि कोटि मेरे सेनानी !
देखें तुममें कितना पानी ?

अंतिम विजय हार अपनी है,
है यह अन्तिम खेला !

आज युद्ध की बेला !

१६

जब विषम स्वर बज रहे हों
तब न निज स्वर मन्द कर हे!

बढ़ रहे हों चरण सम में,
वे न जा पहुँचे विषम में,

इन विवादी स्वरों की सब
मूर्च्छनायें बन्द कर हे!

छेड़ अपनी रागिनी तू,
चित्त-प्राणोन्मादिनी तू,

दग्ध जीवन के क्षणों को
स्निग्ध नव मकरन्द कर हे!

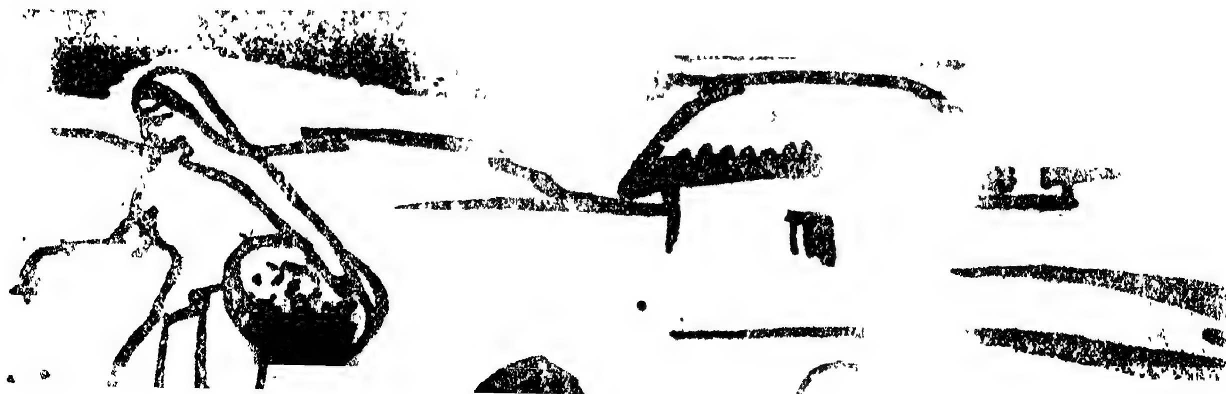
सुने कोई नहीं तव रव,
चुप न रह, गा गीत नवनव,

रुक गई गति जिन उरों की
आज उनमें स्पंद भर हे!

बढ़ उधर हो जिधर आँधी,
चढ़ उधर हो जिधर गांधी,

बंदिनी के मुक्ति-पथ की
यातना आनन्दकर हे!







१७

तुम जाओ, तुम्हें बधाई है !

मेरी जननी के सेनानी !
मेरे भारत के अभिमानी !

पहनो हथकड़ियाँ रण-कंकण
मां देती तुम्हें विदाई है !
तुम जाओ तुम्हें बधाई है !

ओ सेनापति ! नरनाहर हे !
माता के लाल जवाहर हे !

तुमको जाते यों देख
आज उन्मत्त बनी तरुणाई है !
तुम जाओ तुम्हें बधाई है !



आँखों के आँसू आज रुको,
तुम अडिग रहो नीचे न झुको,

मङ्गल बेला में बनो फूल
जा रहा युद्ध में भाई है।
तुम जाओ, तुम्हें बधाई है!

तुम कहीं कभी भी झुके नहीं,
तुम कहीं आज तक रुके नहीं,

वह तरल तिरंगा लहराता,
धरती ऊपर उठ आई है!
तुम जाओ तुम्हें बधाई है!

कब तक होगा यह देश मूक ?
होंगी अब कड़ियाँ टूक टूक,

यह हूक अचूक चुनौती बन
घर घर न्यौता दे आई है!
तुम जाओ तुम्हें बधाई है!

हम पीछे, तुम आगे आगे,
सरदार! चलो, जीवन जागे,

बापू के कुछ मस्तानों ने
सत्ता की नींव हिलाई है!
तुम जाओ, तुम्हें बधाई है!







१८

माली आवत देखिकै, कलियन करी पुकार।
फूली फूली चुन लई, कालि हमारी बार॥

कल है मेरी बार प्रवासी!

आज करो मत यह आयोजन,
पुष्पहार, अर्चन, अभिनन्दन,

करो कामना झेलूं सुख से,
जो हों कठिन प्रहार प्रवासी!

गये सभी अपने दीवाने,
वे आजादी के परवाने,

कैसे रुक सकता मैं बोलो?
आती तीक्ष्ण पुकार प्रवासी!

मिलना हो तो तुम भी आना,
बिछुड़ों को मिल कंठ लगाना,

खूब बनेगी मिल बैठेंगे
जब दीवाने चार प्रवासी!

होगा सारा राग अधूरा,
नहीं करोगे यदि तुम पूरा,

एक साथ बजने ही होंगे
इन प्राणों के तार प्रवासी!

१९

आज तुम किस ओर ?

उधर धन-बल पर सकल
अन्याय बनते न्याय,
इधर दुर्बल पददलित
अगणित विकल असहाय;
उधर युग-शासक, इधर
युग-युग दलित जनरोर!

आज तुम किस ओर ?

उधर दल-बल, सबल तोपें
भर रहीं हुंकार,
इधर अर्पित प्राण की
पड़ती न सुन झंकार;
इधर सब निःशस्त्र,
शस्त्रों का उधर रव घोर!

आज तुम किस ओर ?

उधर अत्याचार की है
रक्तमय तलवार,
इधर जननी के चरण में
जन्म शत बलिहार;
आज बल की ओर तुम,
या, आज बलि की ओर ?

आज तुम किस ओर ?

फा० २७





२०

चलो चलो हे!

शंख बजा, हव्य जला,
आहुति का चक्र चला,

मन्द हो न
अग्निहोत्र,

प्राण ढलो हे!
चलो चलो हे!

मन्दिर में साम-गान,
आत्माहुति बलिप्रदान,

बनो अरुण
यज्ञ-शिखा,

जलो जलो हे!
चलो चलो हे!

दम्भी हों आज ध्वस्त,
दुःख दैन्य अस्त त्रस्त;

मुक्ति-ऋचा
गाओ तुम,

तिमिर दलो हे!
चलो चलो हे!





२१

आई फिर आहुति की बेला !

बैठो गृह में नहीं प्रवासी !
छोड़ो मन की सभी उदासी,

जननी की कातर पुकार पर
करो नहीं अवहेला !
आई फिर आहुति की बेला !

कुछ समिधायें शेष रही हैं,
तरुण अरुण क्या ज्वाल बही हैं,

यह निरग्नि बंदी जीवन अब
कब तक जाये झेला ?
आई फिर आहुति की बेला !

तुम भी अपनी हूति चढ़ाओ,
पूर्णाहुति दे यज्ञ बढ़ाओ,

तिल तिल दे दो दान हठीले !
आज मुक्ति का मेला !
आई फिर आहुति की बेला !





२२

भाई महादेव देसाई !

बापू को तज करके पथ में,
चढ़कर अमरमृत्यु के रथ में,

मिला निमंत्रण, कहाँ चल पड़े ?
कुछ न विलम्ब लगाई !

अब बापू का हाथ बटाकर,
राष्ट्र-कार्य का भार घटा कर,

कौन आयु देगा बापू को
किसने वह गति पाई ?

कौन राष्ट्र-इतिहास लिखेगा ?
पावन राष्ट्र विकास लिखेगा,

वह लेखनी ले गये तुम तो
जो थी लिखने आई !

चले रिक्त कर गोद देश की !
क्या भूलोगे सुधि स्वदेश की ?

स्वतंत्रता की ज्वाला बन कर
उर उर धधको भाई !

भाई महादेव देसाई !



२३

जीवन हो वरदान।

प्रतिपल सुन्दर हो, सुखकर हो,
ज्ञान मुखर हो, कर्म मुखर हो,

रहे आत्मसम्मान।

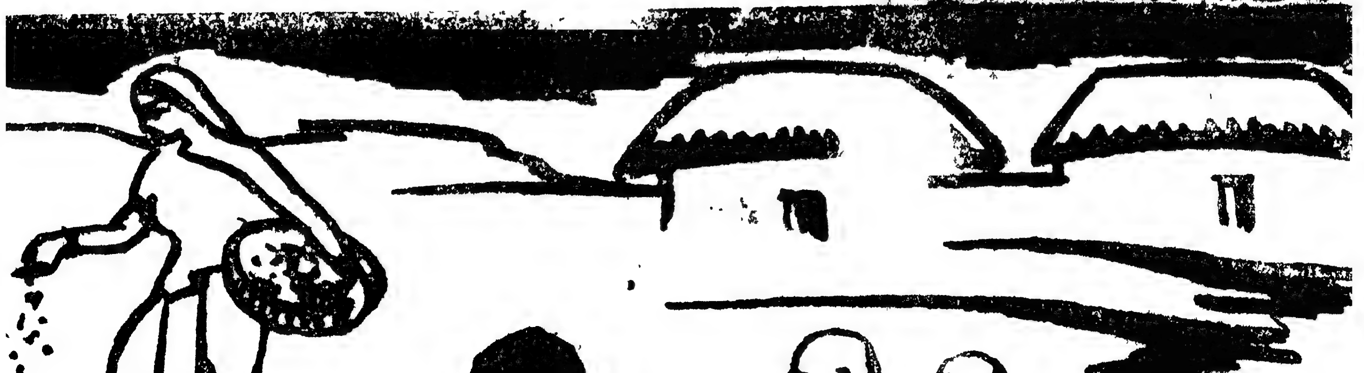
अविचल प्रण हो, अविरल रण हो,
यश बनता निज तन का व्रण हो,

प्रिय हो निज बलिदान।

बढ़ी साध हो, गति अबाध हो,
अपनी पूर्णाहुति अगाध हो,

फल का रहे न ध्यान।







२४

आज सोये प्राण जागे!
देश के अरमान जागे!

सज चली अक्षौहिणी है,
बज चली रणकिंकिणी है,

कोटि कोटि चरण-धरण से
युगों के प्रस्थान जागे!

हटा अवगुंठन मुखों का,
मोह सम्मोहन सुखों का,

बढ़ीं कन्यायें, बहन माँ,
मधुर मङ्गल गान जागे!

है हिमाचल आज उन्नत,
देख निज गौरव समुन्नत,

आज जन में, जनपदों में,
उरों में उत्थान जागे!

नील सिंधु गरज रहा है,
बार बार बरज रहा है,

सावधान! दिगन्त दिग्गज!
देश के अभिमान जागे!

हथकड़ी है खनखनातीं,
बेड़ियाँ हैं झनझनातीं,

आज बन्दी के स्वरों में
क्रान्ति के आह्वान जागे!

आज सोये प्राण जागे!



२५

स्वागत ! आज प्रवासी !

आये आज छिन्न कर कड़ियाँ,
युग युग की लोहे की लड़ियाँ,

गृह गृह मङ्गल दीप जल रहे
मन की मिटी उदासी !

आये कारागृह में तपकर,
मुक्ति मन्त्र निशिवासर जपकर,

पावन करो आज आँगन को
ओ माँ के संन्यासी !

पाकर तुमसे ही नरनाहर,
गिरे राष्ट्र उठते फिर ऊपर,

तरल तिरंगा लहराता फिर,
देख तुम्हें गृहवासी।

तव चरणों की धूलि, तीर्थ कण,
बिखरा दो ये सिकता पावन,

हम मृतकों में जागे जीवन
ओ बलि के अभ्यासी !

स्वागत ! आज प्रवासी !







२६

इस निविड़ नीरव निशा में
कब सुवर्ण प्रभात होगा ?

संकुचित सरसिज खिलेंगे,
सुरभि मधु गृह गृह मिलेंगे,

बह रहा अमृत लिये
मन का अमंद प्रपात होगा !

इस निविड़ नीरव निशा में
कब सुवर्ण प्रभात होगा ?

करेंगे खग विहग कलरव
सजेंगे नव नवल उत्सव,

मुक्त मुक्त समीर में
खिलता सुनहला गात होगा !

इस निविड़ नीरव निशा में
कब सुवर्ण प्रभात होगा ?

झुकेंगी फल - भरी शाखें,
झुकेंगी मद - भरी आँखें,

यह प्रलय का दिन, प्रणय
की गोद में प्रणिपात होगा !

इस निविड़ नीरव निशा में
कब सुवर्ण प्रभात होगा ?

विभव की दूर्वा नवेली,
बनेगी अपनी सहेली,





आज के मरु में सुखद
नंदन सघन नवजात होगा!

इस निविड़ नीरव निशा में
कब सुवर्ण प्रभात होगा?

वेदना के व्यथित तारे,
डूब कर जलनिधि किनारे,

फिर न आयेंगे कभी,
यह चिर तिमिर अज्ञात होगा!

इस निविड़ नीरव निशा में
कब सुवर्ण प्रभात होगा?

नव किरण की मदिर लाली,
भरेगी मधु रिक्त प्याली,

एक ही स्वर कोटि कंठों में
ध्वनित अवदात होगा!

इस निविड़ नीरव निशा में
कब सुवर्ण प्रभात होगा?

विषम पथ ये सम बनेंगे,
सुखद जीवन क्रम बनेंगे,

जन्म नव, जीवन नवल,
नवदेश, नवयुग ज्ञात होगा!

इस निविड़ नीरव निशा में,
कब सुवर्ण प्रभात होगा?







२७

कब होगा गृह गृह में मंगल?

टूटेगी आँगन की कारा,
मुक्त बनेगा जनगण सारा,

जय जननी के महाघोष से
गूँजेगा अंबर अवनीतल!

नव उत्साह भरित मन होंगे
नव निर्माण निरत जन होंगे,

नव चेतन के महाप्राण से
होगा युग प्राणों में नव बल!

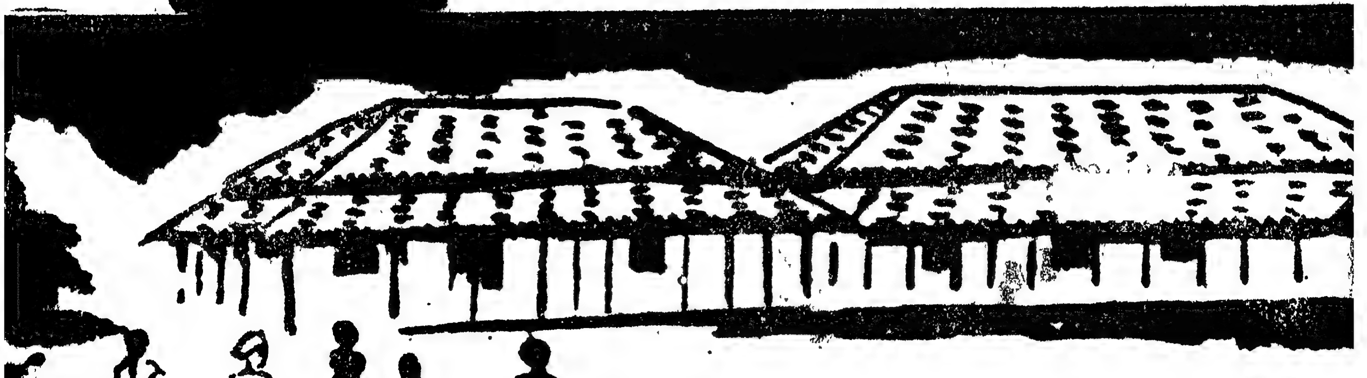
ले करके शत शत आयोजन,
होगा मातृभूमि का पूजन,

महा आरती में गूँजेगा,
कोटि कोटि कंठों का कलकल!

एक जातिमत, एक लोकमत,
उन्नत होगा, सब विरोध नत;

फिर जय के अभियान उठेंगे
पाकर मानव का तप निर्मल!

कब होगा जीवन में मंगल?



२८

क्या अब तुम फिर आ न सकोगे?

जब जगती थी शोणित मग्ना,
चेतनता थी तिमिर निमग्ना,
गति मति प्रगति बनी थी भग्ना,

तब तो तुम आये थे उत्सुक
क्या अब चरण बढ़ा न सकोगे?

हिंसा नृत्य कर रही गृह गृह,
मृत्यु ग्रसित करती है रह रह,
रक्तधार उठती है बह बह,

फिर आकुल आँखों में अब तुम
क्या दो आँसू ला न सकोगे?

फिर अशोक चढ़ते कलिंग पर
शोणित से हो रहे खड्ग तर,
नर-संहार मचा है बर्बर,

बनकर दारुण दाह हृदय में
क्या परिवर्तन ला न सकोगे?





है मानव में रही न ममता,
स्वप्न बनी प्राणों की समता,
फिर किसमें हो करुणा क्षमता?

भरा विषमता से भव व्याकुल
क्या सम-क्रम लौटा न सकोगे?

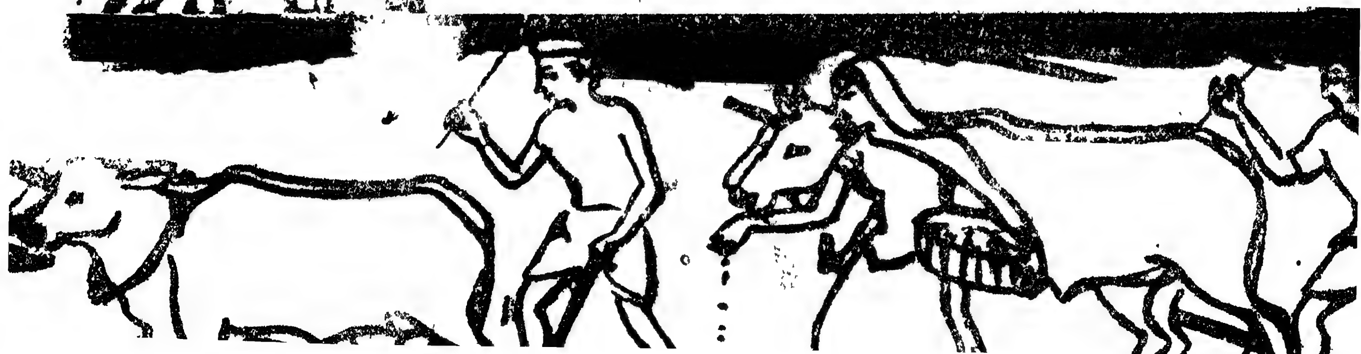
लौटा दो वह युग मङ्गलमय,
पशु-पक्षी सब जिसमें निर्भय,
जहाँ अहिंसा का अरुणोदय,

आत्म-मिलन के सघन कुञ्ज हों,
क्या वह मधुऋतु छा न सकोगे?

आओ, एक बार फिर, आओ,
लाओ, वह मङ्गल दिन, लाओ,
गाओ, वही गीत फिर, गाओ,

आज कहो मत---वह करुणा का
महागान फिर गा न सकोगे?

क्या अब तुम फिर आ न सकोगे?



२९

भव की व्यथा हरो!

भय छाया है देश देश में,
अस्त्र शस्त्र के छद्म वेश में,
खोलो बंद हृदय के लोचन

निर्मल दृष्टि करो!
भव की व्यथा हरो!

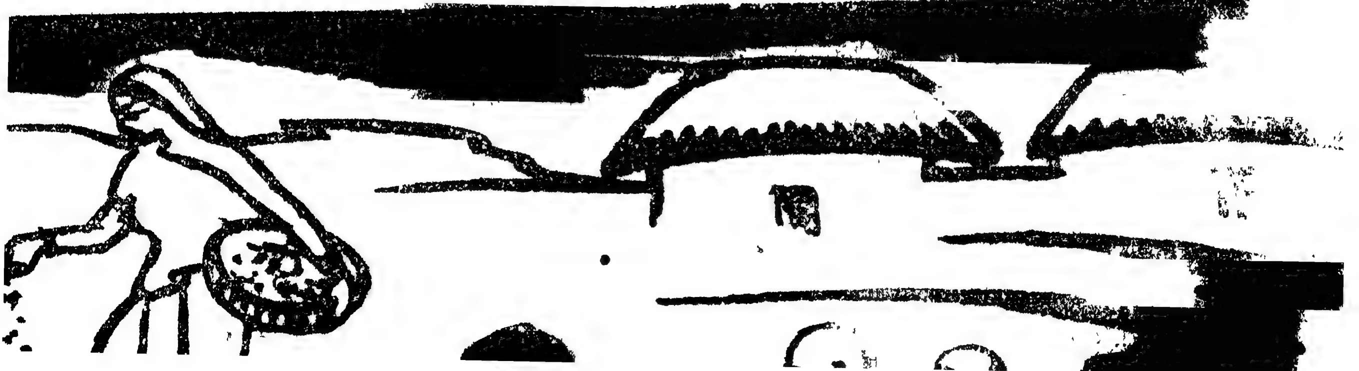
मानव आज बन रहे दानव,
भव में बसा रहे हैं रौरव,
विकसित करो संकुचित शतदल

मधुर मरंद भरो!
भव की व्यथा हरो!

राष्ट्र राष्ट्र में है संघर्षण,
करते सब शोणित का तर्पण,
व्यथित विश्व के मस्तक पर निज

करुणापाणि धरो!
भव की व्यथा हरो!







३०

हैं अमर गायन तुम्हारे
और तुम हो चिर अमर कवि !

पा तुम्हारी पुण्य प्रतिमा !
जगी अपनी लुप्त गरिमा,

विश्व रजनी में उगे रवि !
गये नव आलोक भर कवि !

पा तुम्हारी ज्योति महिमा,
खिली प्राची में अरुणिमा,

पा तुम्हें हम पा गये
पावन पुरातन ऋषि प्रवर कवि !

एकबार विदेश के फिर,
मातृपद पर हुए नत शिर,

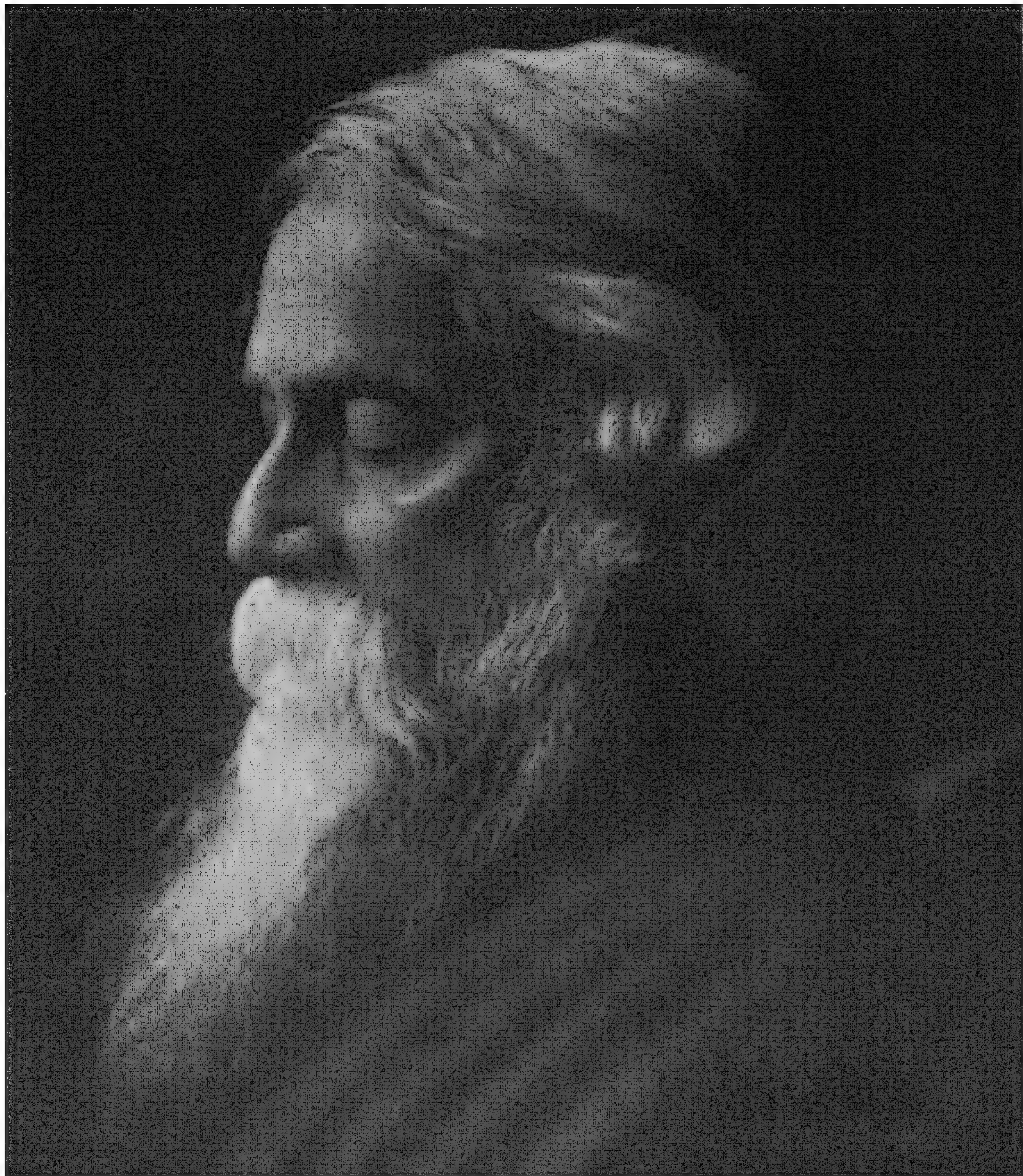
कोटि कंठों में तुम्हारी
उठी गीताञ्जलि लहर कवि !

कौन वह जनपद अभागा ?
जो तुम्हें पाकर न जागा।

बंधनों की शृंखला में
बज रहे बन मुक्ति-स्वर कवि !



*



हैं अमर गायन तुम्हारे
और तुम हो चिर अमर कवि !

पृष्ठ—२२२



३१

जग-जीवन की दोपहरी में
शीतल छाँह बनो मेरे कवि!

श्रान्त पथिक पावे कुछ रस कण,
सूख चलें मस्तक के श्रम कण,

निरालम्ब के नव अवलम्बन,
करुणा बाँह बनो मेरे कवि!

पीड़ित प्राणों में बन गायन,
करो नींद मधु सुख का वर्षण,

वसुधा के जलते कण कण में,
अमृत-प्रवाह बनो मेरे कवि!





३२

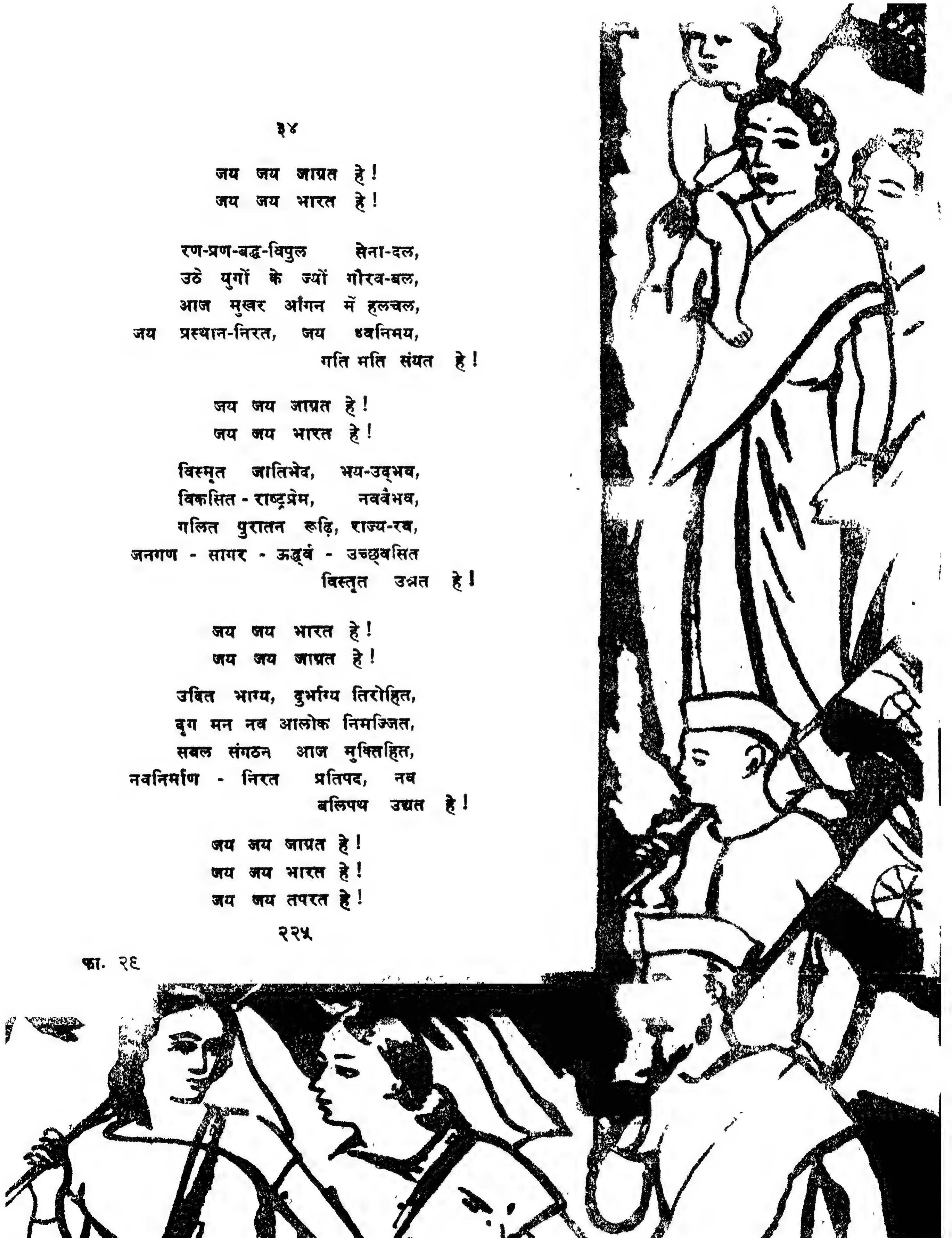
उनको भी सद्बुद्धि राम दो।

भूले हैं जो नाम तुम्हारा,
भूले हैं जो धाम तुम्हारा,
उनको भी श्रद्धा अकाम दो।

भटक रहे मिथ्या माया में,
आत्म भूल, उलझे काया में,
उनको भी गतिमति प्रकाम दो।

व्यथित ग्रथित मुख, दुख से कातर,
हरो आज उन पर करुणाकर!
उनको भी दुख में विराम दो।





३४

जय जय जाग्रत हे!
जय जय भारत हे!

रण-प्रण-बद्ध-विपुल सेना-दल,
उठे युगों के ज्यों गौरव-बल,
आज मुखर आँगन में हलचल,
जय प्रस्थान-निरत, जय ध्वनिमय,
गति मति संयत हे!

जय जय जाग्रत हे!
जय जय भारत हे!

विस्मृत जातिभेद, भय-उद्भव,
विकसित - राष्ट्रप्रेम, नववैभव,
गलित पुरातन रूढ़ि, राज्य-रव,
जनगण - सागर - ऊर्द्ध्व - उच्छ्वसित
विस्तृत उन्नत हे!

जय जय भारत हे!
जय जय जाग्रत हे!

उदित भाग्य, दुर्भाग्य तिरोहित,
दृग मन नव आलोक निमज्जित,
सबल संगठन आज मुक्तिहित,
नवनिर्माण - निरत प्रतिपद, नव
बलिपथ उद्यत हे!

जय जय जाग्रत हे!
जय जय भारत हे!
जय जय तपरत हे!

फा. २६

३५

जय राष्ट्रीय निशान !
जय राष्ट्रीय निशान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

लहर लहर तू मलय पवन में,
फहर फहर तू नील गगन में,
छहर छहर जग के आंगन में,

सबसे उच्च महान !
सबसे उच्च महान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

जब तक एक रक्त कण तन में,
डिगें न तिल भर अपने प्रण में,
हाहाकार मचावें रण में,

जननी की संतान !
जननी की संतान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

मस्तक पर शोभित हो रोली,
बढ़े शूरवीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली,

बूढ़े और जवान !
बूढ़े और जवान !
जय राष्ट्रीय निशान !!

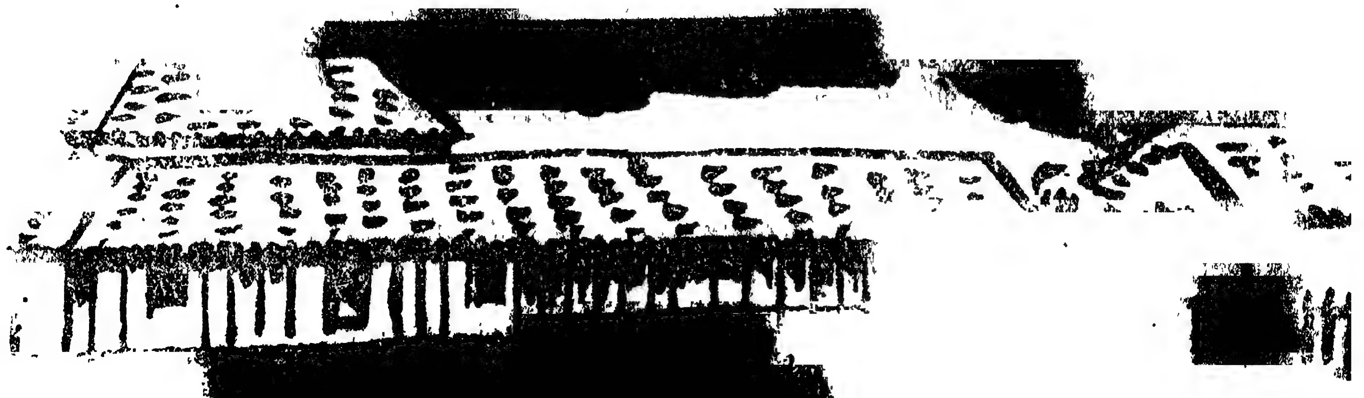
मन में दीन-दुखी की ममता,
हममें हो मरने की क्षमता,
मानव मानव में हो समता,

धनी ग़रीब समान
गूँजे नभ में तान
जय राष्ट्रीय निशान !!

तेरा मेरुदंड हो कर में,
स्वतन्त्रता के महासमर में,
वज्र शक्ति बन व्यापे उर में,

दे दें जीवन-प्राण !
दे दें जीवन-प्राण !
जय राष्ट्रीय निशान !!







३६

न हाथ एक शस्त्र हो,
न साथ एक अस्त्र हो,
न अन्न, नीर वस्त्र हो,

हटो नहीं,
डटो वहीं,
बढ़े चलो
बढ़े चलो !

रहे समक्ष हिमशिखर
तुम्हारा प्रण उठे निखर,
भले ही जाये तन बिखर,

रुको नहीं,
झुको नहीं,
बढ़े चलो
बढ़े चलो !

घटा घिरी अटूट हो
अधर में कालकूट हो,
वही अमृत का घूंट हो,



जिये चलो
मरे चलो
बढ़े चलो
बढ़े चलो !

गगन उगलता आग हो
छिड़ा मरण का राग हो,
लहू का अपने फाग हो

अड़ो वहीं
गड़ो वहीं
बढ़े चलो !
बढ़े चलो !

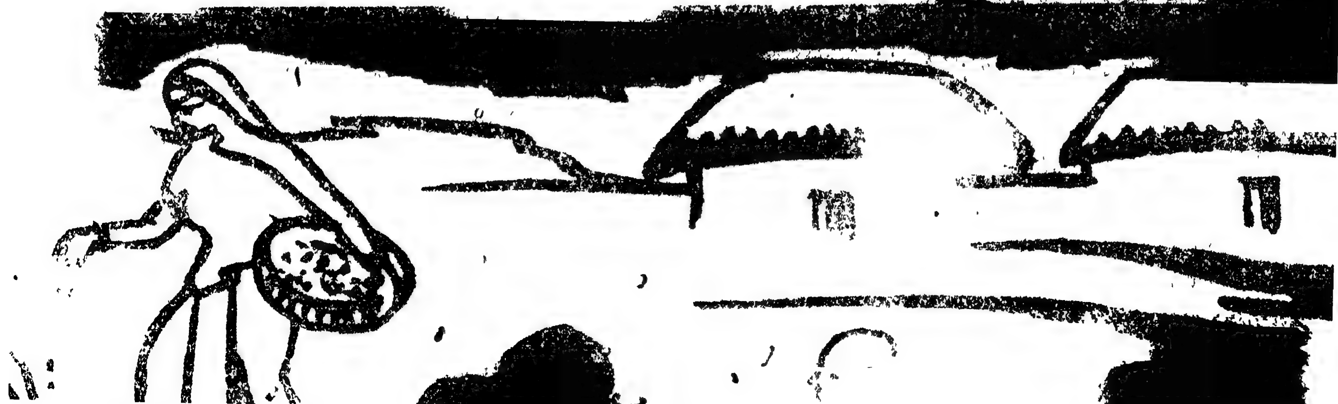
उभर रहा ख्याल हो
चलो नई मिसाल हो,
जलो नई मशाल हो,

रुको नहीं
झुको नहीं
बढ़े चलो
बढ़े चलो !

अशेष रक्त तोल दो,
स्वतन्त्रता का मोल दो,
कड़ी युगों की खोल दो

डरो नहीं
मरो नहीं
बढ़े चलो !
बढ़े चलो !







३७

(प्रयाण-गीत)

फूंको शंख, ध्वजायें फहरें
चले कोटि सेना, घन घहरें।
मचे प्रलय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

जननी के योधा सेनानी,
अमर तुम्हारी है क़ुर्बानी;
हे प्रणमय !
हे व्रणमय !
बढ़ो अभय !



नित पददलित प्रजा के क्रंदन
अब न सहे जाते हैं बंधन !
करुणामय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

बलि पर बलि ले चलो निरंतर,
हो भारत में आज युगांतर;
हे बलमय !
हे बलिमय !
बढ़ो अभय !

तोपें फटें, फटे भू अंबर
धरणी धँसे, धँसे धरणीधर,
मृत्युंजय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

अमर सत्य के आगे थरथर,
कँपे विश्व, काँपे विश्वंभर,
हे दुर्जय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

बढ़ो प्रभंजन आँधी बनकर;
बढ़ो दुर्ग पर गाँधी बनकर;
वीर हृदय !
धीर हृदय !
जय जय जय !





राजतंत्र के इस खँडहर पर,
प्रजातंत्र के उठें नव शिखर;

जनगण जय !
जनमत जय !
बढ़ो अभय !

जगें मातृ-मंदिर के ऊपर,
स्वतन्त्रता के दीपक सुन्दर,

मंगलमय !
बढ़ो अभय !
जय जय जय !

